स्कन्द पुराण में भगवान् शिव

स्कन्द शैवों का बड़ा ही महत्त्वपूर्ण पुराण है। इसमें भगवान् शिव संबंधी लगभग सभी कथाओं तथा शैव-मान्यताओं का वर्णन है। यह पुराण न केवल शैव-पुराणों में अपितु सभी अठारह पुराणों में सबसे बड़ा है। नारद पुराण में ब्रह्माजी मरीचि से कहते हैं कि "मैंने शतकोटि पुराण में जो शिव की महिमा का वर्णन किया है, उसके सारभूत अर्थ का व्यासजी ने स्कन्द पुराण में वर्णन किया है।"[1] स्कन्द पुराण दो रूपों-संहितात्मक एवं खण्डात्मक-में पाया जाता है। स्कंद पुराण(के संहितात्मक रूप) में 6 संहिताएँ- (1) सनत्कुमार, (2) सूत, (3) शांकरी, (4) वैष्णवी, (5) ब्राह्मी तथा(6) सौरी हैं। इन सभी संहिताओं की कुल श्लोक-संख्या लगभग एक लाख है। नारद पुराण में केवल खण्डात्मक स्कंद पुराण का उल्लेख है। इसमें माहेश्वर, वैष्णव, ब्राह्म, काशी, अवन्ति, नागर और प्रभास-ये सात खण्ड हैं। नारद पुराण के अनुसार इसमें लगभग 81000 श्लोक हैं। स्कंद पुराण के प्रभासखण्ड के प्रारंभ में भी स्कंद पुराण के श्लोकों की सख्या 81000 बतायी गयी है। मत्स्य पुराण (53/41-42), वामन पुराण और भागवत पुराण के अनुसार भी श्लोकों की कुल संख्या 81000 है पर अग्नि पुराण के अनुसार कुल श्लोक-संख्या 84000 है।

इस पुराण के खण्डात्मक रूप के चार अलग-अलग पाठ पाये जाते हैं। पहला वेंकटेश्वर प्रेस का(जिसमें 94313 श्लोक हैं), दूसरा बंगवासी प्रेस का, तीसरा नवलकिशोर प्रेस(लखनऊ) और चौथा गुरुमण्डल प्रेस का। इन चारों संस्करणों के विषयों में अन्तर है। उदाहरण के लिये चौरासी लिंगमाहात्म्य जो वेंकटेश्वर प्रेस के अवन्तिखण्ड के द्वितीय भाग तथा गुरुमण्डल प्रेस संस्करण के अवन्तिखण्ड के प्रथम भाग में पाया जाता है वह लखनऊ के नवल किशोर संस्करण में नहीं पाया जाता। गुरुमण्डल संस्करण के अवन्तिखण्ड के तीसरे भाग के करीब 110 अध्याय वेंकटेश्वर-संस्करण से काफी अन्तर रखते हैं। गुरुमण्डल संस्करण में रेवाखण्ड के अन्तर्गत सत्यनारायण माहात्म्य पाया जाता है जबकि वह वेंकटेश्वर प्रेस के संस्करण में नहीं पाया जाता।

संहितात्मक स्कंद पुराण की केवल सनत्कुमार, सूत एवं शंकर संहिताएँ ही उपलब्ध हैं। कहते हैं कि नेपाल में छहों संहितायें पायी जाती हैं। सूत संहिता पर तो आचार्यों के भाष्य भी हैं। इस संहितात्मक स्कन्द पुराण को कोई उप-पुराण कहते हैं तो कोई इसे महापुराण का ही अंग मानते हैं। जो कुछ भी हो इनकी संहिताएँ बड़े महत्त्व की हैं। इस पुराण में तत्पुरुष कल्प की कथाएँ तथा आख्यान हैं। इस अध्याय में मुख्यत: खण्डात्मक स्कंदपुराण के आधार पर शिवतत्त्व की चर्चा की जायगी। परन्तु यदा-कदा प्रसंगवश संहिताओं के भी उद्धरण दिये जा सकते हैं।

---

1. नारद पुराण, पूर्वभाग, चतुर्थपाद 104/2

भगवान् शिव का स्वरूप

भगवान् शिव को ही निर्गुण एवं सगुण अथवा पर एवं अपर ब्रह्म स्वीकार किया गया है। इस पुराण में शिवतत्त्व के ब्रह्म होने की अनेक स्थलों पर चर्चा की गयी है। निम्नलिखित पंक्तियों में हम कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण उद्धरणों की चर्चा करेंगे जिनसे भगवान् शिव का ब्रह्मस्वरूप स्पष्टरूप से प्रकट हो सके।

पुराण के प्रारंभ में ही भगवान् शिव की प्रार्थना में यह कहा गया है कि "जिनकी आज्ञा से ब्रह्माजी इस जगत् की सृष्टि तथा विष्णु भगवान् पालन करते हैं और जो स्वयं ही कालरुद्र नाम धारण करके इस विश्व का संहार करते हैं, उन पिनाकधारी भगवान् शंकर को नमस्कार है।" सूत संहिता में भी कुछ इसी तरह की बात कही गयी है।

यस्याज्ञया जगत्स्रष्टा विरञ्चिः पालको हरिः।
संहर्ता कालरुद्राख्यो नमस्तस्मै पिनाकिने।। (स्क. पु. माहेश्वरख. केदारखण्ड 1/1)*
प्रसादाद्देवदेवस्य ब्रह्मा ब्रह्मत्वमागतः।।
विष्णुर्विष्णुपदं प्राप्तो रुद्रो रुद्रत्वमागतः। (सूत सं.[1] 2/2/14-15)

यहाँ पर भगवान् शिव को ब्रह्मा एवं विष्णु का स्वामी बताया गया है। दक्ष के यज्ञ-विध्वंस के पश्चात् सभी देवताओं के साथ ब्रह्माजी कैलास पहुँचकर भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें शान्तस्वरूप, सर्वव्यापक, परब्रह्मरूप, जटा-जूटधारण करनेवाले, ज्योतिर्मय, जगत् की सृष्टि करने-वाले, सबका भरण-पोषण करनेवाले, रुद्र, महान्, नीलकण्ठ, जगत्स्वरूप, जगत् के आदिकारण, जगत् को आनन्द की प्राप्ति करानेवाले, ओंकार व वषट्कार-स्वरूप, यज्ञस्वरूप तथा समस्त प्राणियों को शरण देनेवाले आदि-आदि कहा है(माहेश्वरख. केदारख.-5/16-19)।* ब्रह्माजी की इस स्तुति में भगवान् शिव के पर एवं अपरब्रह्म -दोनों होने की बात झलकती है।

दक्ष भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें सबको वर देनेवाले, सर्वश्रेष्ठ-देव, सनातन, देवताओं के पालक, ईश्वर, पापहारी, सम्पूर्ण विश्व के स्वामी, विश्वरूप, सनातन-ब्रह्म, स्वात्मरूप, भक्ति से प्राप्त होने योग्य, सर्वरूप तथा वरस्वरूप आदि कहा है।

नमामि देवं वरदं वरेण्यं नमामि देवं च सदा सनातनम्।
नमामि देवाधिपमीश्वरं हरं नमामि शम्भुं जगदेकबन्धुम्।।

---

1. सूत संहिता में चार खण्ड हैं, जिनमें पहला शिवमाहात्म्यखण्ड, दूसरा ज्ञानयोगखण्ड, तीसरा मुक्तिखण्ड और चौथा यज्ञवैभवखण्ड है। उद्धरणों में कई बार इन खण्डों का नाम न देकर वहाँ पर 1, 2, 3 और 4 लिखा जाता है। यज्ञवैभवखण्ड में पूर्व एवं उत्तर दो भाग हैं। उत्तर भाग में 'ब्रह्मगीता' एवं 'सूतगीता'-दो गीताएँ हैं जिनमें क्रमशः 12 एवं 8 अध्याय हैं। इस लेख में जिस 'सूत संहिता' का सन्दर्भ दिया गया है वह श्रीबालमनोरमा प्रेस, माईलापोर(Mylapore), मद्रास द्वारा 1954 में तात्पर्यदीपिका सहित प्रकाशित है।

नमामि विश्वेश्वरविश्वरूपं सनातनं ब्रह्म निजात्मरूपम्।
नमामि सर्वं निजभावगम्यं वरं वरेण्यं वरदं नतोऽस्मि।।

(संक्षिप्त स्क. पु. मा. के. 5/39-40 पृ. 15)

समुद्रमन्थन के पश्चात् राहु के शीश कट जानेपर चन्द्रमा राहु के डर से भगवान् शिव की शरण में पहुँचा। शिवजी ने उसे अभय प्रदान कर अपने शिरपर धारण कर लिया। चन्द्रमा को शरण देने के पश्चात् राहु भी आया और उनसे चन्द्रमा, जो उसका भक्ष्य था, को माँगने के लिये भगवान् शिव की स्तुति करने लगा। उस स्तुति में उसने भगवान् शिव को शान्त-स्वरूप, ब्रह्म, परमात्मा, लिंगरूप-धारी, महादेव, जगत्पति, सम्पूर्ण भूतों का निवास-स्थान, दिव्य, प्रकाश-स्वरूप तथा सब भूतों का पालक कहा है (संक्षिप्त स्क. पु. मा. के. अध्याय 13 पृ. 26)। यहाँपर भी शिव को सगुण एवं निर्गुण दोनों ही स्वीकार किया गया है।

प्रदोषव्रत करनेवाले व्यक्ति को भगवान् शिव की सौ नामों से स्तुति करनी चाहिये। पुराणगत इन सौ नामों की स्तुति में भगवान् शिव को जटा-जूटधारी, परमात्मा, देवताओं के स्वामी, वृषभध्वज, दिगम्बर, उमाकान्त, तपोमय, विष्णुरूप, व्यालप्रिय, पशुपति, त्रिपुर-नाशक, कामदेव का नाश करनेवाला, ज्ञानस्वरूप, सर्वात्मा, वेदों में छिपे गूढ़ तत्त्व, अविनाशी, जिनमें सम्पूर्ण जगत् की स्थिति है, सर्वव्यापी, व्योमरूप, गजासुर एवं अन्धकासुर का नाश करनेवाला, भक्ति-प्रिय, ज्ञाता एवं ज्ञान- स्वरूप, जिनके स्वरूप में कोई विकार नहीं होता, त्रिनेत्रधारी, वेद-वेदांग जिनके स्वरूप हैं, मोक्षस्वरूप, पालक, विश्वरूप, विश्वनाथ, कालस्वरूप, रूपहीन, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, श्मशानवासी, व्याघ्रचर्म धारण करनेवाला, ईश्वर, लिंगरूप, कारणों के अधिपति, प्रणव के अर्थभूत ब्रह्मरूप, मृत्युञ्जय, स्वयंभू, नीलकण्ठ तथा गौरीपति आदि-आदि कहा गया है (संक्षिप्त स्क. पु. मा. के. 17/76-90 पृ. 35-36)।[1]

उपरोक्त स्तुति में भी भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण दोनों रूपों का वर्णन है। काम-दहन के उपरान्त सभी देवगण भगवान् शिव के पास तारकासुर से मुक्ति दिलाने के लिये निवेदन करने गये थे। उस समय देवगणों के साथ ब्रह्माजी स्तुति करते हुए भगवान् शिव को सम्पूर्ण जगत् का भरण-पोषण करनेवाला, जगत्स्वरूप, समस्त लोकों के पिता, माता और ईश्वर, जगत् का स्वामी एवं रक्षक आदि कहते हैं (स्क. पु. मा. के. अ. 22/7-9)।* ब्रह्मादि की प्रार्थना के उपरान्त भगवान् शिव अपना निर्णय सुनाकर अपने आत्म-स्वरूप का चिन्तन करते हुए समाधिस्थ हो गये। शिवजी के आत्मस्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि "जो परे से भी अत्यन्त परे, अपने आप में स्थित, मल आदि दोषों से रहित, निरञ्जन, मिथ्याज्ञान से रहित (निराभास) है, जहाँ सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि अथवा नक्षत्र किसी का भी प्रकाश नहीं है, जो केवलसद्वस्तु, सूक्ष्म तथा सूक्ष्मतर वस्तुओं से भी परे है, जिसका कोई संकेत नहीं है, जो चिन्तन का विषय नहीं, जो ज्ञानस्वरूप, शब्द या वाणी की पहुँच के परे, निर्गुण

1. मूल श्लोकों को इसी पुस्तक में प्रदोषव्रतवाले अध्याय में देखें।

और निर्विकार है, सत्तामात्र ही जिसका स्वरूप है, जो ज्ञानगम्य होकर भी अगम्य है.....जो सबके ईश्वर और परब्रह्म परमात्मा(परमार्थ वस्तु) हैं।"

आत्मानमात्मना कृत्वा आत्मन्येवमचिन्तयत्।।
परात्परतरं स्वस्थं निर्मलं निरवग्रहम्।
निरञ्जनं निराभासं यन्मुह्यन्ति च सूरयः।।
.....
अनिर्देश्यमचिन्त्यं च निर्विकारं निरामयम्।
ज्ञप्तिमात्रस्वरूपं च न्यासिनो यान्ति यत्र वै।।
शब्दातीतं निर्गुणं निर्विकारं सत्तामात्रं ज्ञानगम्यं त्वगम्यम्।
.....
तद्वस्तुभूतो भगवान् स ईश्वरः पिनाकपाणिर्भगवान् वृषध्वजः।।

(संक्षिप्त स्क. पु. मा. केदा. 22/32-37 पृ. 52)

शिव-विवाह के प्रसंग में नारदजी ने (भगवान् शिव के गोत्रादि पूछे जानेपर) भगवान् शिव की महिमा बताते हुए उन्हें नादमय, रूपहीन, ब्रह्मादि देवता भी जिनके गोत्र-कुल का नाम नहीं जानते(अर्थात् जो उनके लिये भी अज्ञेय हैं)-ऐसा ऐश्वर्यवाला बताया है(स्क. पु. मा. के. अध्याय 26)*। लोमशजी शिव-महिमा बताते हुए कह रहे हैं कि वे एक, महान्, ज्योतिःस्वरूप, अजन्मा, परमेश्वर, कार्य-कारण से परे, व्यवधानशून्य, निर्गुण, निर्विकार, निर्बाध, निर्विकल्प, निरीह, निरञ्जन, नित्ययुक्त, निष्काम, निराधार, तथा सदैव नित्यमुक्त हैं।

एको महान् त्योतिरजः परेशः परवराणां परमो महात्मा।
निरन्तरो निर्गुणो निर्विकारो निराबाधो निर्विकल्पो निरीहः।।
निरञ्जनो नित्ययुक्तो निराशो निराधारो नित्यमुक्तः सदैव हि।।

(संक्षिप्त स्क. पु. मा. के. 27/26-27 पृ. 60)

यमराज भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें पापों को जलानेवाले, देवों के पालक, प्रकाशस्वरूप, मृत्यु पर विजय पानेवाले, जटा-जूट-धारी, नीलकण्ठ, पाप-तापों का नाश करनेवाले, सर्वव्यापी, आकाश जिनका एक अवयव मात्र है, काल एवं काल के स्वामी कहा है।(संक्षिप्त स्क. पु. मा. के. अ. 31 पृ. 65)

भगवान् शिव द्वारा काल के भस्म कर दिये जाने के बाद जब राजा श्वेत की समाधि खुली तो उन्होंने सामने खड़े भगवान् शिव की प्रार्थना की। प्रार्थना में वे शिवजी को सबके दुःखों को दूर करनेवाले, शान्तस्वरूप, स्वयंप्रकाश एवं स्वयम्भू, व्यवधानशून्य, सूक्ष्मस्वरूप, जगदीश्वर, सबके रक्षक, जगत् के माता-पिता, सुहृद, सखा, बन्धु, स्वजन, स्वामी तथा ईश्वर कहते हैं (स्क. पु. मा. के.

32/41-42)।* श्वेत के आग्रह पर भगवान् शिव ने काल को पुनः जीवित कर दिया। पुनर्जीवित होने के बाद काल ने भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उन्हें जगत्पति, लिंगरूप से तीनों लोक को व्याप्त करनेवाले, देवताओं और असुरों, सबको अपने में लीन करने के कारण लिंगस्वरूप कहलानेवाले, देवेश्वर, विश्वमंगल, कारणों के भी कारण, बुद्धिहीनों के पालक, ज्ञानियों के लिये ज्ञानात्मा, मनीषी पुरुषों के लिये परम मनीषी, विश्व के एकमात्र बन्धु, आदिदेव, पुराण-पुरुष, संत जिनके नामों एवं गुणों का कीर्तन करते हैं, तीनों लोकों की सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, सम्पूर्ण भूतों के स्वामी आदि कहा है(स्क. मा. के. अ. 32/60-67)।*

तारकासुर के वध के उपरान्त कार्तिकेयजी ने तारकासुर के वधजनित पाप को मिटाने हेतु कुमारेश्वर लिंग की स्थापना की। तदनन्तर उन्होंने भगवान् शिव की स्तुति की। स्तुति में भगवान् शिव को उन्होंने निरामय(रोग-शोक से रहित), कल्याण-स्वरूप, सबके भीतर मनरूप से निवास करनेवाले, सभी देवताओं द्वारा पूजित, सबकी उत्पत्ति के कारण, माया-रूपी गहन वन के आश्रय, जगत् का संहार करनेवाले, कालरूप, सबको शरण देनेवाले, निर्गुण ब्रह्म, भक्तों को मनोवांछित फल देनेवाले, कर्मों के फल देनेवाले, सबको धारण एवं पोषण करनेवाले, अनन्तरूपवाले, अपरिमेय, चराचरस्वरूप, सबको विचार देनेवाले, संपूर्ण भूतों के ईश्वर एवं महेश्वर, हृदय गुहा में निवास करनेवाले परमेश्वर, मुक्ति के अधीश्वर आदि-आदि कहा है।(स्क. पु. मा. कुमा. 34/40-47)*

एक समय ब्रह्मा एवं विष्णु के समक्ष एक अग्निमय स्तंभ प्रकट हुआ जिसका न आदि था न अन्त। भगवान् शिव के उस तेजोमय स्वरूप को देखकर ब्रह्माजी ने उनकी स्तुति की। वे अपनी स्तुति में उन्हें सम्पूर्ण लाकों की उत्पत्ति के एकमात्र हेतु, जिससे सब कुछ प्रकाशित होता है, जिससे बढ़कर कोई नहीं है और जो समस्त भुवनों में उत्कृष्ट है- -ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार भगवान् विष्णु ने भी उनकी स्तुति की। विष्णुजी ने अपनी स्तुति में उन्हें तीनों लोकों के अधीश्वर, गंगाधर, जगन्नाथ, चन्द्रशेखर, असीम दयावन्त, सभी विद्याओं एवं एश्वर्यों को प्रदान करनेवाले, सर्वाधार, जिनकी कृपा के बिना उन्हें कोई नहीं जान सकता तथा जो अपने तुच्छ भक्त को अपनाकर अपने समान बना देते हैं-ऐसा कहा है। दोनों लोगों की स्तुति के उपरान्त उस तेजोमय स्तंभ से गौरवर्ण, नीलकण्ठ पुरुष-रूप से भगवान् शिव प्रकट हुए। उनके इस रूप में प्रकट होने के बाद पुनः दोनों जनों ने उनकी स्तुति की। उस स्तुति में वे उन्हें वरदाता, ईश्वर, देवताओं में सबसे श्रेष्ठ, योगियों के ध्येय, निरञ्जन एवं ब्रह्मस्वरूप आदि कहते हैं।(स्क. पु. मा. अरु. 2/2-9, 12-19, 27)*

मार्कण्डेयजी के पूछने पर नन्दीकेश्वरजी सृष्टि के बारे में बतलाते हुए कहते हैं कि पूर्वकाल में देवकल्प के आदि में विकल्प-शून्य भगवान् शिव ने स्वेच्छा से ही सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न किया। उत्पन्न हुए विश्व की सृष्टि-परम्परा चालू रखने तथा सर्वदा इसकी रक्षा करने के लिये भगवान् शिव ने अपने दक्षिण भाग से ब्रह्मा और बाम भाग से विष्णु को प्रकट किया। तत्पश्चात् ब्रह्मा को रजो-

गुण से और विष्णु को सत्त्वगुण से युक्त किया। फिर महादेवजी से प्रेरित होकर वे दोनों देवता सृष्टि एवं रक्षा के कार्य में संलग्न हो सम्पूर्ण जगत् पर शासन करने लगे(स्क. पु. माहे. ख. अरुणाचल माहात्म्यखण्ड, उत्तरभाग 8/8-12)।*

जो तेजोलिंग ब्रह्मा एवं विष्णु के समक्ष प्रकट हुआ था, तथा जिसका आदि तथा अन्त दोनों ने नहीं पाया था, पर ब्रह्माजी ने केतकी द्वारा झूठी गवाही पेश कर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहा था, उस समय विष्णुजी ने शिव की जो स्तुति की थी उसमें उन्होंने शिवजी को पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, यजमान, आकाश, जल, आदि रूप धारण करनेवाले, कालस्वरूप, मृत्युञ्जय, अक्षय ऐश्वर्य सम्पन्न, जगत्-स्रष्टा एवं देहधारियों के रक्षक, भूतों का संहार करनेवाले, जगत् के बाहर एवं भीतर व्याप्त, वेद जिसके निःश्वास हैं, देवता, दानव, दैत्य, सिद्ध, विद्याधर, मनुष्य, पशु-पक्षी, पर्वत, वृक्ष सब कुछ आप ही हैं, स्वर्ग, अपवर्ग, ॐकार, यज्ञ आप ही हैं, ...परात्पर परमेश्वर, सबपर शासन करनेवाले, महेश्वर, ... आपके आदेश से मैं और ब्रह्मा पालन तथा सृष्टि में समर्थ होते हैं, आदि-अन्त रहित, सब देवताओं से श्रेष्ठ, जब आप अपनी भक्ति प्रदान करते हैं तब उससे मोक्ष प्राप्त होता है-ऐसा कहा है(स्क. पु. मा. अरुणाचल माहात्म्यखण्ड, उत्तर भाग 14/19-31)।*

विष्णु के पश्चात् ब्रह्माजी ने भी तेजोमय लिंग से प्रकट शिव की स्तुति की तथा उसमें उन्होंने शिवजी को ब्रह्मा, विष्णु आदि का कर्त्ता, पशुपति, जो पाश से लोगों को बाँधते तथा मुक्त करते हैं, ईश्वर, सर्वव्यापी, जालंधर, अन्धक आदि का दमन करनेवाले, कालकूट का पान कर जगत् की रक्षा करनेवाले, अर्द्धनारीश्वर, परशुराम को अस्त्र-शस्त्र प्रदान करनेवाले, शरभावतार के द्वारा नृसिंह का दमन करनेवाले, विष्णु को सुदर्शन चक्र प्रदान करनेवाले-ऐसा कहा है(स्क. पु. मा. अरुणाचल माहात्म्यखण्ड, उत्तर भाग 16/1-19)।*

महिषासुर के वध के उपरान्त पार्वती ने अरुणाचलेश्वर की प्रार्थना की थी। प्रार्थना से प्रसन्न हो भगवान् शिव ने उनके सम्मुख प्रकट हो इस प्रकार कहा था- मैं और तुम सदा एक दूसरे से अभिन्न हैं। मैं नारायण हूँ, तुम लक्ष्मी हो, मैं ब्रह्मा हूँ, तुम सरस्वती हो ..... तुम प्रकृति हो मैं पुरुष हूँ..... मैं ईश्वर हूँ और तुम मेरी शक्ति हो। सृष्टि, पालन और संहार के कार्य में सदा अनुग्रह रखनेवाली ईश्वरी हो ..... हमने स्वेच्छा से ही पृथक-पृथक शरीर धारण किया है(स्क. पु. मा. अरुणाचल माहात्म्यखण्ड, उत्तरभाग 21/11-18)।*

पाण्ड्य-नरेश वज्रांगद की सेवा से अरुणाचलेश्वर प्रसन्न होकर उनसे कहते हैं "..... आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा और पुरुष-इन मेरी आठ मूर्तियों से व्याप्त होकर सम्पूर्ण चराचर जगत् प्रकाशित होता है। मैं इन सब तत्त्वों से परे शिव हूँ, मुझसे भिन्न दूसरी कोई वस्तु नहीं है। मेरे स्वरूपभूत चिदानन्द समुद्र से उठी हुई कुछ लहरें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सम्पूर्ण देवताओं को आनंद से परिपूर्ण करती हैं। मैं समस्त संसार का स्वामी हूँ। गौरी देवी मेरी महाशक्ति माया हैं। इन्हीं

के द्वारा सम्पूर्ण विश्व सदा आच्छादित होता और विस्तार को प्राप्त होता है। इन महाशक्ति के द्वारा सदा सृष्टि-रक्षा और संहाररूप लीला विलासों से अत्यन्त विचित्ररूप में प्रस्तुत किये हुए इस जगत् को मैं स्वेच्छा से देखता रहता हूँ।" (स्क. पु. मा. अरुणाचल माहात्म्यखण्ड, उत्तरभाग 24/39-44)*

प्रदोषव्रत की पूजा, स्तुति एवं परिक्रमा के उपरान्त की जानेवाली शिवजी की प्रार्थना में उन्हें सनातन, देवताओं के अधीश्वर, सर्वदेवपूजित, सर्वगुणातीत, सबको वर देनेवाले, आधाररहित, अविनाशी, विश्वम्भर, संपूर्ण विश्व के लिये एकमात्र जानने योग्य वस्तु, नागराज वासुकि को आभूषण के रूप में धारण करनेवाले, अनन्त गुणों के आश्रय, अचिन्त्य, निरञ्जन, दयासिन्धु, भक्तों की पीड़ा दूर करनेवाले, संसार-सागर से पार उतारनेवाले तथा परमेश्वर आदि कहा जाता है (स्क. पु. ब्रह्म. ब्रह्मोत्तर. 7/59-66)।* प्रार्थना के मूल श्लोकों के लिये इसी पुस्तक में प्रदोष व्रतवाला अध्याय देखें।

राजा नल-दमयन्ती के पौत्र चन्द्रांगद के यमुना में डूबकर नागलोक पहुँचने पर तक्षक उनसे कुछ प्रश्न पूछता है जिसके उत्तर में वे भगवान् शिव की महिमा का विवेचन करते हैं। वे भगवान् शिव को देवों के देव, महादेव, विधाता के भी विधाता, कारण के भी कारण, विश्वात्मा, सम्पूर्ण भूतों के साक्षी, सबकी आत्मा में स्थित रहनेवाले परमेश्वर, निरञ्जन, सम्पूर्ण संसार जिसकी इच्छा के अधीन है, ज्ञानी पुरुष जिन्हें एक, आदि और पुराण-पुरुष कहते हैं, गुणों के भेद से जिनमें भिन्नता की प्रतीति होती है, जिन्हें कोई क्षेत्रज्ञ, कोई तुरीय, कोई कूटस्थ कहते हैं, चैतन्यमय, अचिन्त्य तत्त्व, श्रुति जिसे नेति-नेति कहती है, आत्मज्ञानी पुरुषों के भी मन-वाणी से परे, जिनके प्रसाद से कालचक्र को लांघा जा सकता है, गंगा जिनके मस्तक पर विराजमान हैं, भगवती जिनके अर्द्धांग में निवास करती हैं, तक्षक एवं वासुकी नागराज जिनके कानों के कुण्डल हैं, वेद एवं उपनिषद् जिनके चरणों का गुणगान करते हैं, जिनका दिव्यस्वरूप योगियों के हृदय में प्रकाशित होता है, जिनकी सगुण मूर्ति सम्पूर्ण तत्त्वों का प्रकाश करनेवाली है तथा जो गुणमयी सृष्टि पर विजय पानेवाले हैं-ऐसा कहते हैं। (स्क. पु. ब्रह्म. ब्रह्मोत्तरखण्ड अध्याय 8/83-97)

शिवयोगी ऋषभ ने भद्रायु (एक संकटग्रस्त राजा) को शिव-कवच का उपदेश दिया था। उस कवच में भगवान् शिव को समस्त लोकों के एकमात्र कर्त्ता, भर्त्ता एवं संहरता, सब लोकों के एकमात्र गुरु एवं साक्षी, वेदों के गूढ़ तत्त्व, सबको वर देनेवाले, समस्त पापों एवं पीड़ाओं का नाश करनेवाले, सबको अभय देनेवाले, ...निर्गुण, उपमारहित, निराकार, निराभास, निरामय, निष्प्रपंच, निष्कलंक, निर्द्वन्द्व, निःसंग, निर्मल, नित्यरूप..... शुद्ध-बुद्ध, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दघन, अद्वितीय, प्रकाशमय ... .खट्वांग, खंग, ढाल, पाश, अंकुश, डमरू, शूल, धनुष-बाण, गदा, शक्ति, भिन्दिपाल, तोमर, मुसल, मुद्गर, पट्टिश, परशु, परिघ, भुशुण्डि, शतघ्नी और चक्र आदि आयुधों से युक्त, भयंकर हाथोंवाले, मृत्युञ्जय, त्र्यम्बक, विश्वरूप, वृषवाहन, विश्वतोमुख आदि कहा गया है।

..... सकललोकैककर्त्रे सकललोकैकसंहर्त्रे सकललोकैक गुरवे सकललोकैकभर्त्रे

सकल लोकैकसाक्षिणे ..... निष्कलङ्काय निर्गुणाय निष्कामाय निरुप्लवाय निरवद्याय निरन्तराय निष्कारणाय निरातङ्काय निष्प्रपंचाय ..... निर्विकल्पाय निर्भेदाय ..... निरञ्जनाय ..... नित्यशुद्धबुद्धपरिपूर्णसच्चिदानन्दाद्वयाय परमशान्तस्वरूपाय ..... मृत्युञ्जय त्र्यम्बक त्रिपुरान्तक विश्वरूप ..... वृषभवाहन विश्वतोमुख .....। (स्क. पु. ब्रह्म. खण्ड ब्रह्मोत्तरखण्ड अध्याय 12)[1*] सम्पूर्ण शिव-कवच इसी पुस्तक में अन्यत्र देखें।

भद्रायु के परीक्षा में सफल होने के बाद भगवान् शिव ने उन्हें दर्शन दिया। भद्रायु ने भगवान् शिव को देखकर उनकी स्तुति बड़े विस्तार से की। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को अविकारी, कारणरहित, कारणों का कारण, सच्चिदानन्दमय, प्रशान्तस्वरूप, साक्षी, जगत् के कर्त्ता, ... इन्द्रियों से परे, अविर्भाव एवं तिरोभाव की लीला से युक्त, मन की पहुँच से परे, परमात्मरूप, सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले, त्रिमूर्तिरूप, ज्ञानानन्दघन, नित्य, निराभास, सत्यज्ञानमय, विशुद्ध अन्तरात्मा, समस्तकर्मों से मुक्त, पापराशि का विदारण करनेवाले, मृत्युञ्जय, अविनाशी, सूर्य, चन्द्र एवं अग्निमय नेत्रोंवाले, गंगाधर ..... आदि-आदि कहा है(स्क. ब्रह्म. ब्रह्मोत्तर. अध्याय 14/48-61)।*

विश्वानर मुनि ने बालक रूपधारी भगवान् शिव की स्तुति में अभिलाष्टक स्तोत्र पढ़ा। इस स्तोत्र में उन्हें अद्वितीय ब्रह्म, रूपरहित अथवा एकरूप होकर भी नाना रूपों में प्रतीत होनेवाले, संपूर्ण विश्व में व्याप्त, बिना इन्द्रियों के सभी कर्मों के कर्त्ता, वेदों से परे, इन्द्रादि देवता तथा योगीश्वरों से भी अज्ञेय पर कृपाप्राप्त भक्तों द्वारा ज्ञेय कहा गया है(स्क. पु. काशीखण्ड-पूर्वार्ध अध्याय 10/126-133)।* अभिलाष्टक स्तोत्र का मूल पाठ इसी पुस्तक में अन्यत्र देखें।

चन्द्रमा के पुत्र बुध ने काशी में भगवान् शिव के प्रकट होनेपर उनकी स्तुति की। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को विश्वरूप, रूप से अतीत, निराकार, सबकी पीड़ाओं का नाश करनेवाले, सबके ज्ञाता, सर्वस्रष्टा, परमदयालु, भक्तिभाव से प्राप्य, तपस्याओं का फल देनेवाले, सर्वेश, ईश्वर आदि कहा है।(काशीखण्ड पूर्वार्ध-अध्याय 15/55-59)*

शुक्राचार्य ने भी काशी में भगवान् शिव के प्रकट होनेपर उनकी अष्टमूर्त्यात्मक स्तोत्र द्वारा स्तुति की। इस स्तुति में उन्हें शान्ति, क्षमा आदि गुणों से विभूषित, आत्मस्वरूप, अज्ञान का अपहरण करनेवाले, सबके अन्तरात्मा में निवास करनेवाले, परमात्मस्वरूप तथा विश्व के उत्पादक आदि कहा गया है(काशी पूर्वा. अध्याय 16/101-108)।* शुक्राचार्य का पूरा स्तोत्र इसी पुस्तक में अन्यत्र देखें।

शिव शर्मा को भगवत्पार्षद कैलास की स्थिति के बारे में बताते हुए उन्हें शिवजी की महिमा भी बताने लगे। वे उनसे कह रहे हैं कि लीलास्वरूप धारण करनेवाले उन भगवान् का यह सब

1. इस कवच के भिन्न-भिन्न पाठ मिलते हैं, यद्यपि उनके भाव लगभग एक से ही हैं। उनमें अन्तर केवल कुछ शब्दों एवं उनके क्रम को लेकर है। कवच का जो अंश यहाँ दिया गया है वह वेंकटेश्वर प्रेस की प्रति से भिन्न है यद्यपि यहाँ सन्दर्भ वेंकटेश्वर प्रेस की प्रति का दिया गया है।

दृश्य-प्रपंच खेलमात्र है। ..... यह समस्त जगत् उनकी आज्ञा का पालक है। श्रुतियों में साकार, निराकार, सर्वव्यापी, नित्य, सत्य एवं द्वैतरहित कहकर जिस परब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है, वे ही भगवान् शिव हैं। वे समस्त कारणों से परे एवं परात्पर हैं। वे परमानन्दमय, वेदों तथा मन-वाणी द्वारा अगम्य, ज्योतिःस्वरूप, अन्तर्यामी, अनिर्वचनीय, रूपरहित होकर भी माया से अनेक रूप धारण करनेवाले, अनन्त तथा सर्वज्ञ आदि हैं। भगवान् रुद्र के पर और अपर दो रूप हैं, जो सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके स्थित हैं। वे निराकार होकर भी साकार हैं। भगवान् शिव ही भोग एवं मोक्ष के कारण हैं.....।(स्क. पु. काशी. पू. अध्याय 23/23-38)*

तस्यदेवस्यखेलोऽयंस्वलीलामूर्तिधारिणः।
सविश्वेशइतिख्यातस्तस्याज्ञाकृदिदंजगत्।।
सर्वेषांशासकश्चासौतस्यशास्तानचापरः।
स्वयं सृजतिभूतानिस्वयंपातितथात्तिच।।
अमूर्तंयत्परंब्रह्मसमूर्तंश्रुतिचोदितम्।
सर्वव्यापिसदानित्यंसत्यंद्वैतविवर्जितम्।।
सर्वेभ्यःकारणेभ्यश्चपरात्परतरपरम्।
आनंदंब्रह्मणोरूपंश्रुतयोयत्प्रचक्षते।।
संविदंतेनयंवेदाविष्णुर्वेदनवैविधिः।
यतोवाचोनिवर्तंतेह्यप्राप्यमनसासह।।

(स्क. महापु. का. पू. 23/24-25, 27-29)

भावार्थ यह है कि यह संपूर्ण विश्व भगवान् शिव का खेल है। वही लीलापूर्वक मूर्तरूप धारण करता है, वही विश्व का स्वामी है तथा उसकी आज्ञा से ही यह संसार रचित है। वही सबका शासक है पर उसपर किसी का शासन नहीं है, वह स्वयं ही सभी भूतों की रचना करता है तथा उनका पालन करता है। वही श्रुतिसम्मत निर्गुण एवं सगुण ब्रह्म है। वह सर्वव्यापक, नित्य, सत्य एवं अद्वैत है। वह सभी का कारण, श्रेष्ठतम से भी श्रेष्ठ तथा श्रुतियों में वर्णित आनंदस्वरूप ब्रह्म है। जिसे वेद, ब्रह्मा तथा विष्णु कोई भी नहीं जानता तथा जिसे वाणी और मन विना प्राप्त (जाने हुए) किये ही लौट आते हैं। अर्थात् जो मन-वाणी से परे है।

एक स्थल पर सूर्यदेव ने भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें देवाधिदेव, जगत्पते, सर्वव्यापी, भवभयहारी, मनोवाँछित फल देनेवाले, त्रिलोचन, जीवों के अज्ञानमय बंधन का नाश करनेवाले, शितिकण्ठ, शूलपाणि, चन्द्रशेखर, नागेन्द्रभूषण, कामनाशन, पशुपते, त्रिपुरारे, ईश्वर, तीनों वेदस्वरूप, कालकूट के विष का दलन करनेवाले, काल के भी काल, सर्वव्यापी, स्वर्ग-अपवर्ग प्राप्त करानेवाले, अन्धकासुर के शत्रु, जटा-जूटधारी, ब्रह्मा-विष्णु द्वारा स्तुत्य, वेदों के द्वारा जानने योग्य परमात्मा,

विश्वरूप, निराकार ब्रह्म, मोक्ष देनेवाले, मन एवं वाणी से परे तथा सर्वव्यापी परमेश्वर कहा है।(स्क. पु. काशी. पू. 49/46-53)*

अन्यत्र जैगीषव्य मुनि भगवान् शिव की स्तुति में उन्हें शांत, सर्वज्ञ, शुभस्वरूप, परमानन्दप्राप्ति के हेतु, स्थावर-जंगमरूप, शेषनाग का भुजबंद धारण करनेवाले, आधे अंग में पार्वती को धारण करनेवाले, देहबंधन को दूर करनेवाले, दिगंबर, संपूर्ण जगत् के स्वामी, जरा एवं जन्म का कष्ट हर लेनेवाले, पाप का अपहरणकरनेवाले, वेदस्वरूप, भक्तों को संतोष देनेवाले, नामस्मरण करनेवाले को तीनों लोकों का ऐश्वर्य देनेवाले, अज्ञानबंधन को खोलनेवाले, पशुपति, कारण-कार्य से परे, जगत् की उत्पत्ति के हेतु, सम्पूर्ण भूतों का पालन करनेवाले, मृत्युंजय, यज्ञस्वरूप, सनातन, ईश्वर, सर्वरूप, सर्वज्ञ, क्षमाशील, सर्व-समर्थ, ओंकारस्वरूप, वषट्कार, भूः, भुवः तथा स्वः लोक एवं दृश्य एवं अदृश्य सर्वरूप, शब्द एवं अर्थरूप, कर्त्ता, धर्त्ता एवं संहर्त्ता आदि कहा है।(स्क. पु. काशीख. उत्तरार्द्ध अध्याय 63/32-66)* स्तुति के कुछ अंशों को देखें-

नमः शिवायशान्ताय सर्वज्ञायशुभात्मने।
जगदानंदकंदायपरमानंदहेतवे।।
अरूपायसरूपायनानारूपधराय च।
विरूपाक्षायविधये विधि विष्णुस्तुताय च।।
सर्वात्मनेनमस्तुभ्यं नमस्ते परमात्मात्मने।
त्रयीमयायतुष्टायभक्त तुष्टि प्रदाय च।।
नाममात्रस्मृतिकृतांत्रैलोक्यैश्वर्यपूरक।
पशुपाशविमोक्षायपशूनांपतयेनमः।।
नामोच्चारणमात्रेणमहापातकहारिणे।
त्वमोंकारोवषट्कारोभूर्भुवः स्वस्त्वमेवहि।।
एकएवभवानीशएकःकर्तात्वमेवहि।
पाताहर्ता त्वमेवैकोनानात्वंमूढ कल्पना।।

(स्क. महापु. का. ख. उ. 63/32-34, 45, 49-50, 60, 64-65)*

काशी के ओंकारेश्वर लिंग की स्तुति में ब्रह्माजी भगवान् शिव को अक्षरस्वरूप, ओंकाररूप, निराकार, तीनों वेदस्वरूप, नाद, बिन्दु एवं कलास्वरूप, लिंगरहित होकर भी लिंगरूप में प्रकट होनेवाले, आदि-अन्तरहित, भव(जगत् को उत्पन्न करनेवाले), रुद्र(दुःख दूर करनेवाले) और शर्व(संहारकारी), पशुओं(अज्ञानी जीव) का पालन करनेवाले, तारक, प्रणवरूप, माया से परे, नृत्य, वाद्य एवं गानस्वरूप, स्थूल एवं सूक्ष्म, दृश्य एवं अदृश्यरूप धारण करनेवाले, शब्दातीत, शब्दब्रह्म, परब्रह्म, वेदस्वरूप, ज्ञानस्वरूप, योगियों एवं तपस्वियों को सिद्धि प्रदान करनेवाले, मन्त्ररूप तथा मन्त्रों के फलदाता,

सर्वकर्त्ता, सर्वभोक्ता और सर्वसंहारकारी, विष्णु एवं ब्रह्मा होकर जगत् का पालन एवं सृजन करनेवाले, वेदवाणी से अगोचर तथा परमगति आदि कहते हैं।(स्क. पु. काशी. उत्तरार्द्ध अध्याय 73/101-141)*

धर्मेश्वर लिंग की उपासना से प्रसन्न हो भगवान् शिव यमराज के सामने वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। उस समय यमराज ने शिवजी की स्तुति की। उस स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव को कारणों के कारण, निराकार, सर्वरूप, परमाणुस्वरूप, अगम्य, संसार-सागर से पार उतारनेवाले, सम्पूर्ण जगत् के ईश्वर, गुणों से रहित फिर भी समस्त गुणों के आधार, काल और प्रकृति से परे, काल एवं प्रकृति-रूप, मोक्ष प्रदान करनेवाले, परमात्मा, जगत् के अन्तरात्मा, जगत्स्वरूप, ब्रह्मा, विष्णु और शिव होकर विश्व की सृष्टि, पालन एवं संहार करनेवाले, भक्तों के कल्याणकारी, चन्द्रकला विभूषण, पिनाकपाणी तथा सर्पों के आभूषण धारण करनेवाले आदि-आदि कहा है।(स्क. पु. काशीख. उत्तरार्द्ध अध्याय 78/32-41)*

अवन्तीक्षेत्र-माहात्म्य के प्रारंभ में महाकाल की वन्दना में कहा गया है "प्रजा की सृष्टि करनेवाले प्रजापति देव भी प्रबल संसार-भय से मुक्त होने के लिये जिन्हें नमस्कार करते हैं, जो सावधान चित्तवाले ध्यानपरायण महात्माओं के हृदय-मन्दिर में सुख-पूर्वक विराजमान होते हैं और चन्द्रमा की कला, सर्पों के कंकण तथा व्यक्त चिन्हवाले कपाल को धारण करते हैं, सम्पूर्ण लोकों के आदिदेव उन भगवान् महाकाल की जय हो।"

स्रष्टारोऽपि प्रजानां प्रबलभवभयाद्यं नमस्यन्ति देवा
यश्चित्ते सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसां ध्यानयुक्तात्मनां च।
लोकानामादिदेवः स जयतु भगवाञ्छ्रीमहाकालनामा
विभ्राणः सोमलेखामहिवलययुतं व्यक्तलिङ्गं कपालम्।।

(संक्षिप्त स्क. पु. आवान्त्यखण्ड आवंत्यक्षेत्रमाहात्म्य अध्याय 1 पृ. 699)

ब्रह्माजी से पाशुपतव्रत की दीक्षा प्राप्तकर देवगणों ने भगवान् शिव की आराधनाकर उन्हें प्रसन्न किया। भगवान् शिव के प्रकट होनेपर उन्होंने उनकी स्तुति में उन्हें धर्मरूप वृषभ को वाहनरूप में प्रयोग करनेवाले, ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मा जिनके शरीर हैं, सब प्रकार के रोगों का अपहरण करनेवाले, पंचमुख, देव, दैत्य तथा यतियों के अधिपति, विश्वरूप, शान्त, ज्ञानस्वरूप, विश्वसंहारकारी, कुरूप-सुरूप तथा सैकड़ों रूप धारण करनेवाले तथा वर देनेवाले आदि कहा है।(संक्षिप्त स्क. पु. आवन्त्यखण्ड-अवन्तीक्षेत्रमाहात्म्य-पृ. 702)

मार्कण्डेयजी युधिष्ठिर से कहते हैं कि स्वायम्भुव मनवन्तर के आदि कल्प के सतयुग में नर्मदा के तटपर रहनेवाले देवताओं को कंकोल, कालिकेय और कालक नामवाले दानवों ने परास्त करके वहाँ से मार भगाया। वे देवता ब्रह्माजी के साथ महादेवजी की शरण में गये। तब सात पातालों को भेद कर

"ॐ **भूर्भुवः स्वः**" का उच्चारण करते हुए पर्वत से एक लिंग प्रकट हुआ। उस ॐकाररूपी लिंग ने ब्रह्माजी को मन्त्रोंपदेश किया। ब्रह्माजी ने उपदेश सुनकर उनकी स्तुति 101 नामों द्वारा की। उस स्तुति में भगवान् शिव को आकाश के तुल्य सर्वव्यापक, आकाश का भी संहार करनेवाले, जिनका न कहीं अन्त है, न कोई स्वामी है, अमृत एवं ध्रुवस्वरूप, भगवान्, कल्याण की उत्पत्ति के स्थान, सनातन, योगासन पर विराजमान, ॐकारस्वरूप, सबकी उत्पत्ति के कारण तथा सर्वेश्वर आदि कहा गया है।(संक्षिप्त स्क. पु. आव. रे. अध्याय 47 पृ. 784-785)

दीप्तिकेश्वर लिंग की देवताओं के स्वामी विष्णु, ब्रह्मा तथा अन्यान्य देवताओं ने विभिन्न नामों से स्तुति की है। सैकड़ों नामोंवाली इस स्तुति में भगवान शिव को सदा रहनेवाला, पापहारी, सर्वसमर्थ, संसार के कारण, वैराग्य एवं मोक्ष के कारण, भगवान्, तपस्वी, समस्त प्राणियों को उत्पन्न एवं नष्ट करनेवाले, मतवाले वेश में अपनें स्वरूप को छिपाये रखनेवाले, सम्पूर्ण लोकों की प्रजा के पालक और स्वामी, ब्रह्मा एवं विष्णुस्वरूप, परमात्मा, पापरहित, सबकी उत्पत्ति के आदि कारण, सर्वज्ञ, अपने से भिन्न अन्य किसी ईश्वर से रहित, अजन्मा, सर्वव्यापक, परशुरामरूप, महानादस्वरूप, दुर्धर्ष प्रेतों में विचरनेवाले, अनेक रूपों में प्रकट, कर्म एवं काल के ज्ञाता, यज्ञस्वरूप, काल को भी दण्ड देनेवाले, अविनाशी शरीरवाले, संसार-बंधन से मुक्त करानेवाले, भस्म लगानेवाले, सबके ज्ञानदाता, अव्यक्त, यज्ञस्वरूप, अर्थ और अनर्थ की प्राप्ति में कारण, भक्तों के क्लेशों का अपहरण करनेवाले, ईश्वर, ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ, चतुर्मुख, चतुर्लिंग, परात्पर तथा बह्मा आदि देवताओं और महर्षियों को भी जिनका ज्ञान नहीं होता-ऐसा कहा गया है। पूर्वकाल में इन्द्र सहस्त्र नामों द्वारा दीप्तिकेश्वर आदि पाँचों लिंगों का स्तवन कर देवराज के पदपर प्रतिष्ठित हुए थे।(संक्षिप्त स्क. पु. आव. रेखाखण्ड पृ. 798-799)

त्रिशंकु को सशरीर स्वर्गलोक में भेजने की प्रतिज्ञा पूरी करने हेतु विश्वामित्र ने भगवान् शंकर का दर्शनकर स्तुति की तथा उनसे सृष्टिरचना की शक्ति का वरदान पाया तथा नूतन सृष्टि करके त्रिशंकु को सशरीर स्वर्गलोक भेजने में सफलता प्राप्त की। भगवान् शंकर की अपनी स्तुति में विश्वामित्र उन्हें अचिन्त्य, कृष्ण, जगन्नाथ, जगद्गुरु, अनन्त, अच्युत, अमर, अजेय, अव्यय, सुरेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वेश्वर, सर्वपापनाशन, धाता, विधाता, देवेश, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि, वषट्कार, यज्ञ और सर्वव्यापी कहते हैं।(संक्षिप्त स्क. पु. नागरखण्ड पृ. 828)

महादेवजी प्रभासक्षेत्र की महिमा के सन्दर्भ में पार्वती से कहते हैं कि- "मैं प्रभासक्षेत्र में रुद्राक्ष की माला धारण किये शान्त भाव से स्थित हूँ। मेरा आदि, मध्य और अन्त कहीं नहीं है। मैं कमल के आसन पर बैठा हुआ सबको वर देने के लिये उद्यत हूँ। हिम, कुन्द और चन्द्रमा के सदृश मेरा गौर वर्ण है। मेरे वाम भाग में विष्णु तथा दक्षिण भाग में ब्रह्माजी स्थित हैं। नेत्रों में अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य का निवास है। महादेवि! ऐसे स्वरूप से मैं प्रभास क्षेत्र में रहता हूँ।"

यह सुनकर पार्वती ने भगवान् शिव का स्तवन किया जिसमें उन्होंने शिवजी को ईश्वर, समस्त देवताओं के स्वामी, परमेश्वर, अनादि, संपूर्ण सृष्टि के विधाता, सर्वव्यापक, सब में स्थित, सृष्टिदाता तथा मोक्षदाता कहा है।(संक्षिप्त स्क. पु. प्रभासखण्ड पृ. 958)

प्रभासक्षेत्र में ब्रह्माजी से लिंग स्थापित कराकर चन्द्रमा ने भगवान् शिव की हजार वर्षोंतक आराधना की। विधिपूर्वक पूजा करने के बाद चन्द्रमा भगवान् शिव की स्तुति किया करते थे। स्तुति में वे भगवान् शिव को अनन्य देवता, शरणागतवत्सल, सांख्य के प्रधान एवं पुरुष, योगी जिनका परम प्रधान एवं परम पुरुष रूप से चिन्तन करते हैं, ज्ञेयस्वरूप, देवता, असुरों एवं मनुष्यों की सृष्टि तथा संहार का कारण, सर्वात्मा, अविनाशी, अनादि, अनन्त, नित्य, सनातन, ध्रुव, कलातीत एवं परब्रह्मस्वरूप, पवित्रतम, तीर्थात्मा, जिनसे सबकी उत्पत्ति होती है, जिनमें सबका लय होता है, जो सम्पूर्ण जगत् का पालन करता, अग्निष्टोम आदि यज्ञों द्वारा जिनका भजन होता हैं, तथा यज्ञात्मा कहा करते थे।(संक्षिप्त स्कन्दपु. प्रभासखण्ड पृ. 964 - 965)

राजा उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव ने एक समय प्रभासक्षेत्र में आकर सहस्त्रों वर्षोंतक कठोर तपस्या की। वे शिवलिंग की स्थापना कर प्रतिदिन उसकी पूजा एवं स्तुति करते थे। उन्होंने अपनी स्तुति में भगवान् शिव को सच्चिदानन्दस्वरूप, समस्त कारणों के भी कारण, संसार-सागर पार होने का सेतु, संपूर्ण योगशक्तियों से युक्त, संपूर्ण जगत् जिसके अधीन है, अपनी आठ मूर्तियों द्वारा समस्त लोकों का पालन करनेवाले, शरणदाता तथा परमेश्वर आदि कहा है।(संक्षिप्त स्क. पु. प्रभासख. पृ. 1000)

न्यङ्कुमती के तटपर स्थित सोमनाथ महादेव की पूजा करके कुबेरजी ने शिवजी का स्तवन किया था। वे अपने स्तवन में शिवजी को अजन्मा, पुराण, विष्णु के भी वन्दनीय, चन्द्रमा, सूर्य एवं अग्निसमान नेत्रवाले, सबके एकमात्र ईश्वर, विश्व के निवासस्थान, अनन्त शक्तिसम्पन्न, सहस्त्रों मूर्ति धारण करनेवाले, अक्षर, निर्गुण, अप्रमेय, ज्योतिर्मय, एक, जानने योग्य, अनिन्द्य, अन्तर्यामीरूप से सर्वत्र विराजमान, मनोवांछित फलों के दाता, आसक्तिरहित, धर्मासनपर स्थित, परा तथा अपरा प्रकृतियों में विराजमान, इन्द्रियातीत, तीनों गुणों से परे, विश्वपालक, वेदमय, संसारबंधन को काटनेवाले, नित्य मुक्तस्वरूप, परमपुरुष परमात्मा, देवों द्वारा अगम्य तथा अचिन्त्य महिमावाले आदि कहते हैं।(संक्षिप्त स्क. पु. प्रभासखण्ड पृ. 1030)

अविमुक्तक्षेत्र की उत्पत्ति के प्रसंग में भगवान् शिव पार्वती से कह रहे है कि "महाप्रलयकाल में समस्त चराचर प्राणी नष्ट हो गये थे। सर्वत्र अंधकार छा रहा था। ..... केवल वह सत्स्वरूप ब्रह्म ही शेष था, जिसका श्रुति **'एकमेवाद्वितीयम्'** कहकर वर्णन करती है। वह मन और वाणी का विषय नहीं है। उसका न कोई नाम है, न रूप। वह सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्दस्वरूप एवं प्रकाशमय है। वहाँ किसी भी प्रमाण की पहुँच नहीं है। वह आधाररहित, निर्विकार एवं निराकार है। निर्गुण, योगिगम्य, सर्वव्यापी, एकमात्र कारण, निर्विकल्प, कर्मों के आरंभों से रहित, माया से परे और

उपद्रवशून्य है। जिस परमात्मा के लिये इस प्रकार विशेषण दिये जाते हैं, वह कल्पान्त में अकेला ही था। कल्प के आदि में उसके मन में यह संकल्प हुआ कि 'मैं एक से दो हो जाऊँ।' अतः यद्यपि वह निराकार है तो भी उसने अपनी लीलाशक्ति से साकाररूप धारण किया। परमेश्वर के संकल्प से प्रकट हुई वह द्वितीय मूर्ति सम्पूर्ण ऐश्वर्य-गुणों से युक्त, सर्वज्ञानमयी, शुभ, सर्वव्यापक, सर्वस्वरूप, सबकी साक्षी, सबको उत्पन्न करनेवाली और सबके लिये एकमात्र वन्दनीय थी। प्रिये! उस निराकार परब्रह्म की वह मूर्ति मैं ही हूँ। प्राचीन और अर्वाचीन विद्वान् मुझे ईश्वर कहते हैं। तदनन्तर साकाररूप में प्रकट होकर भी मैं अकेला ही स्वेच्छानुसार विहार करता रहा। फिर अपने शरीर से कभी अलग न होनेवाली तुम प्रकृति को मैंने अपने ही विग्रह से प्रकट किया। तुम्हीं प्रधान, प्रकृति और गुणवती माया हो। तुम्हें बुद्धितत्त्व की जननी तथा निर्विकार बताया जाता है। फिर एक ही समय मुझ कालस्वरूप आदिपुरुष ने तुम शक्ति के साथ उस काशीक्षेत्र को भी प्रकट किया" (स्क. पु. काशीखण्ड-पूर्वार्द्ध अध्याय 26/8-24)।*

चक्रतीर्थ (धर्मपुष्करिणी) के तटपर धर्मराज की तपस्या से भगवान् शंकर प्रकट हुए थे। भगवान् शंकर के प्रकट होनेपर उनकी स्तुति में धर्मराज ने उन्हें जगत् का स्वामी, ॐकारस्वरूप, ईश्वर, समस्त देवता जिनके स्वरूप हैं, आदि, मध्य एवं अन्तरहित, विश्वरूप, संपूर्ण जगत् के आधार, अनन्त, अजन्मा, अविनाशी, समस्त लोकों के स्वामी, पशुओं (जीवों) का पालन करनेवाले पशुपति, पापों का नाश करनेवाले, समस्त क्षेत्रों (शरीरों) के स्वामी, भगवान् तथा पंचानन आदि कहा है। (स्क. पु. ब्रह्मख. सेतूमाहात्म्य 3/55-60)*

भृगुतीर्थ में भगवान् शिव के दर्शनपाकर भृगुजी ने उनकी स्तुति 'करुणा हृदय' नामक स्तोत्र से की। इस स्तुति में उन्होंने भगवान् शिव को सभी जीवों में आत्मारूप से विराजमान, समस्त भूतों के ईश्वर, कल्याण एवं ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, सबके पाप हरण करनेवाले, तेजस्वरूप, पशुपति, अखिल विश्व के स्वामी, निर्दोष, नित्य, विज्ञानानन्दस्वरूप, तथा सदा सबका कल्याण करनेवाला कहा है। (संक्षिप्त स्क. पु. आवन्त्यखण्ड रेवाखण्ड पृ. 756-757)

सूत संहिता के अनुसार पूर्वकाल में विष्णु आदि सभी देवता जगत् के कारण-तत्त्व का विचार करते हुए संशय में पड़ गये। तब वे रुद्रलोक में गये। वहाँपर महादेवजी से उन लोगों ने पूछा-'आप कौन हैं?' तब उन्होंने कहा-'मैं काल, माया और कर्मपाशों में आबद्ध जीवों का (पशुओं का) पति पशुपति हूँ, सर्वज्ञ ईश्वर हूँ। समस्त प्रलयपर्यन्त रहनेवाले तत्त्वों का सारभूत सनातन तत्त्व मैं हूँ। ब्रह्मा से भी पूर्व मैं ही केवल एक ईश्वर रहा हूँ और आगे भी रहूँगा। मेरी मायाशक्ति से ही समस्त जड़-चेतन जगत् कल्पित हुआ भासता है, वह शक्ति भी मुझसे पृथक सत्ता नहीं रखती।' ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूप-तीन देवों से अतिरिक्त आत्मस्वरूप, सदाशिव, परतत्त्व, निष्कल, सकल आदि रूप में वही एक परमेश्वर ही व्याप्त है। देवताओं के प्रश्न करनेपर आगे शिवजी ने बताया कि मुझको वेद-वाक्यों

से, आचार्य-गुरुओं से, ज्ञानदृष्टि से जो जीव भलीभाँति जान लेता है, वह द्वैत प्रपंच से सदा के लिये मुक्त हो जाता है-

मामेवं वेदवाक्येभ्यो जानात्याचार्यपूर्वकम्।
यः पशुः स विमुच्येत ज्ञानाद्वेदान्तवाक्यजात्।। (सूत संहिता 1/2/10)

सगुण-साकाररूप में शिव की अभिव्यक्ति यतियों, मन्त्रजापकों, तथा ज्ञानियों और योगियों के लिये ध्यान-पूजा के निमित्त ही होती है।

यतीनां मन्त्रिणां चैव ज्ञानिनां योगिनां तथा।
ध्यानपूजानिमित्तं हि तनुं गृह्णाति मायया।। (कल्याण, शिवोपासनांक पृ. 298)

ब्रह्मोत्तरखण्ड के प्रारंभ में ज्योतिमात्र जिनका स्वरूप है, निर्मल ज्ञान ही जिनका नेत्र है, जो लिंगस्वरूप ब्रह्म हैं-ऐसा कहकर उन परमशान्त कल्याणमय भगवान् शिव को नमस्कार किया गया है।

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञान चक्षुषे।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिंगमूर्तये।। (स्क.पु. ब्राह्मखण्ड-ब्रह्मोत्तर खण्ड 1/1)*

उपरोक्त सभी उद्धरणों में भगवान् शिव के सगुण एवं निर्गुण, पर एवं अपर, दोनों रूपों की चर्चा की गयी है। देव, असुर, मानव, ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी लोगों ने भगवान् शिव की स्तुति की है तथा उनके परात्पर तथा सगुण-साकार दोनों पहलुओं को समझकर उनकी महत्ता एवं गरिमा को इन स्तुतियों में व्यक्त किया है। इन उद्धरणों में भगवान् शिव को ही सर्वोच्च देव या ईश्वर कहा गया है।

भगवान् शिव की उपासना

ऊपर के अनेक उद्धरणों में भगवान् शिव के भोग एवं मोक्षदाता तथा पापहर्त्ता होने की बात कही गयी है। उन्हें परम दयालु, कल्याणकारी, वरदाता तथा एकमात्र जाननेयोग्य तत्त्व कहा गया है। इन सब विशेषताओं के होने के कारण भगवान् शिव ही एकमात्र उपासना के योग्य तत्त्व हैं। इनकी उपासना से व्यक्ति अपने सभी मनोवांछित फल प्राप्त कर सकता है। अनेकों(सुर, असुर, नाग, यक्ष और गंधर्व आदि) ने भगवान् शिव की उपासना से अभीष्ट वर प्राप्त किया है। जिनके वर से ब्रह्माजी सृष्टिकार्य, विष्णुजी जगत् के पालन का कार्य करते हैं(मा. केदार. 1/1 आदि)*, इन्द्र देवराज के पदपर सुशोभित होते हैं(आव. रेवाखण्ड पृ. 757 तथा 799) तथा यमराज धर्मराज होकर चराचर के धर्माधर्म का निर्णय करते हैं(काशी. उत्त. अध्याय 78)।* जिनकी कृपा से सूर्यदेव भगवान् शिव के नेत्र बनकर लोगों के उपास्य बने(काशी. पू. अ. 49)*, विश्वामित्र को सृष्टिरचना की शक्ति प्राप्त हुई (नागरखण्ड पृ. 827-828), शुक्राचार्य को मृतसंजीवनी विद्या तथा शुक्रलोक प्राप्त हुआ(काशी. पू. अ. 16)*, ध्रुव को ध्रुव स्थान, जिसे भगवान् विष्णु का परमपद भी कहते हैं, प्राप्त हुआ(प्रभासखण्ड पृ. 1000), विश्वानर मुनि को (गृहपतिरूपधारी) शिव पुत्ररूप में मिले(काशी. पू. अ. 10-11)*, हरिकेश यक्ष को दण्डपाणिपद की प्राप्ति(का. पू. अध्याय 32)* तथा धर्मराज को भगवान् शिव के

वाहन बनने का सौभाग्य मिला(ब्रह्मखण्ड-सेतुमाहात्म्य पृ. 411)। शिव की कृपा से ही अश्वत्थामा की सोते हुए पाण्डुपुत्रों एवं अन्य लोगों की हत्या के पाप से मुक्ति (ब्राह्मखण्ड-सेतुमाहात्म्य पृ. 427-430), रावण के वध से लगे पाप से राम को मुक्ति (ब्रह्मखण्ड-सेतुमाहात्म्य पृ. 441), गरुड़जी का भगवान् विष्णु का वाहन बनकर भूमंडल में पूजनीय हो जाना (काशीखण्ड पूर्वार्द्ध अ. 50)*, जैगीषव्य का मोक्ष के साधनभूत योगशास्त्र को प्राप्तकर प्रसिद्ध योगाचार्य बनना(काशीख. उत्तरार्द्ध अध्याय 63)*, विश्वकर्मा को शिल्पनिर्माण तथा अन्य कलाओं की प्राप्ति (काशीखंड उत्तरार्द्ध अ. 86)*, बाल्मीकि को कवित्व शक्ति की प्राप्ति (आवन्त्यखण्ड-अवन्तिक्षेत्रमाहात्म्य पृ. 709), अंधकासुर को गणपति का पद प्राप्त होना(आवन्त्यखण्ड-अवन्तिक्षेत्रमाहात्म्य पृ. 722), जमदग्नि को कामधेनु की प्राप्ति(आवन्त्यखण्ड-रेवाखण्ड पृ. 764), बाणासुर एवं मातंग ऋषि का भगवान् शिव का सामीप्यमुक्ति प्राप्त करना(आवन्त्यखण्ड-रेवाखण्ड पृ. 775 तथा 791), नारदजी को योग की सिद्धि, स्वर्ग, पाताल तथा मर्त्यलोक में अबाध भ्रमण की शक्ति, सात स्वर, तीन ग्राम और 21 मूर्छनाओं के साथ दिव्य नृत्य एवं संगीत कला का ज्ञान प्राप्त करना (आवन्त्यख.-रेवाखण्ड पृ 811), मार्कण्डेयजी को ज्ञान की प्राप्ति (आव. रेवाखण्ड पृ. 814), वत्स मुनि को चिरयौवन तथा लोकान्तरों का ज्ञान एवं आकाशगमन की शक्ति की प्राप्ति (नागरख. अध्याय 29 पृ. 845) तथा लोमश ऋषि का कल्पों की आयु पाना(माहेश्वर. कुमारिका. अध्याय 12)* संभव हुआ।

शुकदेवजी के विरक्त हो जानेपर उनकी माता चेटिका ने शिवजी के वर से मनोवांछित पुत्र पाया(नागरखण्ड पृ. 900), शिवजी के वर से चन्द्रमा ने अपनी यक्ष्मा की बिमारी से मुक्ति प्राप्त कर अपनी प्रभा को पुनः वापस पाया(प्रभासखण्ड अ. 22 पृ. 965), परशुराम ने मनोवांछित फल पाकर क्षत्रियों का विनाश किया(प्रभासखण्ड पृ. 998), रावण तीनों लोकों का स्वामी बना (प्रभासखण्ड पृ. 998), अगस्त्यजी ने परमसिद्धि प्राप्त की(प्रभासखण्ड पृ. 983), कुबेर ने दिक्पाल का पद प्राप्त किया(प्रभासखण्ड पृ. 1030-1031) तथा बृहस्पति को देवों के गुरु का पद प्राप्त हुआ। (काशीख. पू. अध्याय 17)।*

शिवाराधना से लाभान्वित होनेवालो की सूची का कोई अन्त नहीं है, ऊपर की सूची नगण्य- मात्र है। भगवान् शिव की आराधना के अनेकों तरीके हैं जैसे-तप, जप, ध्यान, लिंगपूजा, कवच, स्तोत्र तथा वन्दना आदि द्वारा भक्ति करना, तीर्थसेवन और प्रदोषादि व्रत करना। नीचे हम आराधना के इन पहलुओं पर स्कंदपुराणानुसार विचार करेंगे। परन्तु इनपर विचार करने से पहले शिवजी की उपासना के माहात्म्य पर थोड़ा प्रकाश डाला जायगा।

सूत संहिता के मुक्तिखण्ड में तपस्या करते हुए भगवान् विष्णु से शिवजी उनके तपस्या करने का कारण पूछते हैं। जवाब में विष्णुजी तीन प्रश्न पूछते हैं- (1) मुक्ति क्या है (2) मुक्ति का उपाय क्या है तथा (3) मोचक कौन है? तब भगवान् शिव ने सालोक्यादि चार मुक्तियों को समझाकर

पाँचवी कैवल्यमुक्ति को सर्वोपरि बतलाया। उसे केवल ब्रह्मस्वरूपा, सर्वदा सुखलक्षणा, हेयोपादेयशून्य, सभी भेदमूलक संबंधों से हीन, साक्षात् आत्मस्वरूप और स्वयंप्रकाशरूप बतलाया। शेष मुक्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश के सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्यादि-भेद से होनेवाली प्रवर मुक्ति हैं।

शिवजी ने मुक्ति का उपाय इस तरह बताया है-

आत्मनः परमा मुक्तिर्ज्ञानादेव न कर्मणा।
ज्ञानं वेदान्तवाक्यानां महातात्पर्यनिर्णयात्।। (सूत सं. 3/3/2)

अर्थात्-आत्मा की परममुक्ति (कैवल्यमुक्ति) ज्ञान से ही होती है, कर्म से नहीं। वेदान्तवाक्यों के महान् तात्पर्य-निर्णय को ज्ञान कहते हैं। (यद्यपि कर्म से भक्ति और भक्ति से ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसलिये यहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि कैवल्य की प्राप्ति में कर्म या भक्ति की कोई भूमिका नहीं है।) यों तो सूत संहिता में बाहरी पूजा की अपेक्षा मानसिक पूजा को तथा यज्ञों में ज्ञानयज्ञ को श्रेष्ठ माना गया है। परन्तु सामान्य लोगों के लिये बाह्य पूजा तथा अन्य प्रकार के यज्ञ भी उपादेय हो सकते हैं क्योंकि उनके द्वारा कैवल्य के अलावा अन्य प्रकार की मुक्तियाँ प्राप्त हो सकती हैं। तथा कालान्तर में ज्ञान की प्राप्ति भी हो सकती है।

मायापाश से मुक्त करानेवाले के विषय में देवी सरस्वती को भगवान् शंकर ने, सूत संहिता में, बतलाया है कि ब्रह्मादि से लेकर कीट-पर्यन्त आदि सभी जीवों को पशु कहा गया है। विद्वानों ने उनका पति, पशुपति, मुझे बताया है। मैं मायापाश से इन पशुओं को बाँधता हूँ और बन्धन छुड़ानेवाला मोचक भी हूँ। सभी का मैं आत्मा हूँ, अतः मैं ही संसारमोचक हूँ। संसार के मोचक मुक्ति-प्रदाता वह गुरुमूर्ति मैं ही हूँ। वास्तव में सब कुछ शिव ही हैं और उन्हीं के प्रसाद से भुक्ति अथवा मुक्ति प्राप्त हो सकती है।

शिवप्रसादेन हि भुक्तिरुत्तमा शिवप्रसादेन हि मुक्तिरुत्तमा।
शिवप्रसादेन विना न भुक्तयःशिवप्रसादेन विना न मुक्तयः।।

(सूत संहिता यज्ञवैभवखण्ड पूर्वभाग 14/59)

सूत संहिता में अन्यत्र, सत्यसन्ध के प्रति स्वयं भगवान् विष्णु ने कहा है-

नाहं संसारमग्नानां साक्षात् संसारमोचकः।
ब्रह्मादिदेवताश्चान्या नैव संसारमोचकाः।।
शिव एव हि जन्तूनां महासंसारवर्तिनाम्।
संसारमोचकः साक्षात्सर्वज्ञः साम्ब ईश्वरः।।
अहं ब्रह्मादिदेवाश्च प्रसादात्तस्य शूलिनः।
प्रणाड्यैव हि संसारमोचका नात्र संशयः।।
नामतश्चार्थतश्चापि महादेवो महेश्वरः।

तदन्ये केवलं देवा महादेवा न तेऽनघ।।
महादेवं विना यो मां भजते श्रद्धया सह।
नास्ति तस्य विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्मकोटिभिः।।

(सूत संहिता यज्ञवैभवखण्ड पू. भा. 25/39-40, 44, 51, 52)

भावार्थ है- " संसारमग्न जनों को मैं संसार से साक्षात् मुक्ति नहीं दे सकता। इसी प्रकार अन्य ब्रह्मादि देव भी साक्षात् संसारमोचक नहीं हैं। मैं और ब्रह्मादि अन्य देव त्रिशूलधारी के प्रसाद से प्रणाडी (शिवज्ञा-सम्पादन) के द्वारा संसारमोचक हो सकते हैं, इसमें संशय नहीं है। हे अनघ- निष्पाप! नाम से और अर्थ से महेश्वर ही महादेव हैं, और सब देव कहाते हैं महादेव नहीं। जो पुरुष महादेव को छोड़कर मेरा भजन श्रद्धा से करता है उसका कोटि जन्म होनेपर भी संसार से कदापि मोक्ष नहीं होगा, क्योंकि कैवल्यमुक्ति देनेवाले केवल महादेव ही हैं।"[1]

उपरोक्त उपदेश का अनुसरण कर सत्यसन्ध ने सबको छोड़कर शिव की शरण ली और मुक्त हो गया।

परित्यज्याखिलान्देवानाश्रितोऽभवदीश्वरम्।।
ईश्वरस्य प्रसादेन सत्यसन्धो महाद्विजः।
ज्ञानं वेदान्तजं लब्ध्वा विमुक्तो भवबन्धनात्।।

(सूत संहिता यज्ञवैभवखण्ड पू. भा. 25/55-56)

शौनकजी कहते हैं कि जो लोग भक्तिपूर्वक महादेवजी की आराधना करते हैं वे ही भक्त हैं, वे ही महात्मा हैं तथा वे ही कर्मयोगी और ज्ञानी हैं।[2]

भगवान् शिव की भक्ति के माहात्म्य की चर्चा करते हुए सूतजी कहते हैं कि बुद्धिमान् लोग सदा शिव की पूजा करें। अशक्त लोगों को विनम्रभाव से शिवपूजा को देखना चाहिये। अश्रद्धापूर्वक की गयी शिवपूजा भी मुक्ति प्रदान करती है। शिवपूजा का दर्शक भी मरणोपरान्त परमपद को प्राप्त कर लेता है।

---

1. कुछ लोग इन श्लोकों को साम्प्रदायिक मान सकते हैं। परन्तु अगर हम यहाँपर मुक्ति का अर्थ सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य आदि, जिसे विष्णु आदि अन्य देव भी प्रदान कर सकते हैं, न लेकर कैवल्यमुक्ति लें, तो वह एकमात्र निर्गुण ब्रह्म शिव ही दे सकते हैं। क्योंकि कैवल्यावस्था निर्गुण अवस्था है और उसे निर्गुण तत्त्व ही प्रदान कर सकता है। अतः यहाँपर ब्रह्मा, विष्णु आदि देवता का अर्थ प्राकृतिक गुणों से युक्त देवता लें तो वे कैवल्य मुक्ति नहीं प्रदान कर सकते। हाँ यह बात अवश्य सत्य है कि सभी देवता तत्त्वतः निर्गुण हैं और उनमें एकत्व है। अतः सगुणरूपधारी देवों की उपासना से कैवल्य की प्राप्ति नहीं होगी। इसके लिये निर्गुण ब्रह्म शिव की, जिसका बाह्य एवं स्थूल प्रतीक लिंग एवं सूक्ष्म तथा आन्तरिक अथवा आत्मिक प्रतीक ॐकार है, उपासना करनी होगी।
2. संक्षिप्त स्कन्द पुराण. पृ. 68

शिवपूजां सदा कुर्याद्बुद्धिमानिह मानवः।
अशक्तश्चेत्कृतां पूजां पश्येदभक्तिविनम्रधीः।।
अश्रद्धयापि यः कुर्याच्छिवपूजां विमुक्तिदाम्।
पश्येद्वा सोपि कालेन प्रयाति परमं पदम्।।

(श्रीस्क. महापु. ब्राह्मखण्ड ब्रह्मोत्तरखण्ड 4/3-4)*

सूतजी कहते हैं कि भगवान् शिव गुरु हैं, देवता हैं, शिव ही प्राणियों के बन्धु हैं, आत्मा और जीव हैं। शिव से भिन्न दूसरा कुछ भी नहीं है।

शिवो गुरुः शिवो देवः शिवो बन्धुः शरीरिणाम्।
शिव आत्मा शिवो जीवः शिवदन्यत्र किञ्चन।।

(स्क. पु. ब्राह्मखण्ड ब्रह्मोत्तरखण्ड 5/1)*

वहीं पर आगे कहा गया है कि सभी आगमों द्वारा यह निश्चित किया गया है कि सभी धर्मों को छोड़कर एकमात्र शिव के भजन से व्यक्ति सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। अर्थात् मुक्ति को प्राप्त कर लेता है।

विहाय सकलान्धर्मान्सकलागम निश्चितान्।
शिवमेकं भजेद्यस्तुमुच्यते सर्वबन्धनात्।।

(स्क. पु. ब्राह्मखण्ड ब्रह्मोत्तरखण्ड 5/4)*

अतः वही जिह्वा सफल है, जो भगवान् शिव की स्तुति करती है। वही मन सार्थक है, जो शिव के ध्यान में संलग्न होता है। वे ही कान सफल हैं, जो उनकी कथा सुनने के लिये उत्सुक रहते हैं और वे ही दोनों हाथ सार्थक हैं, जो शिवजी की पूजा करते हैं। वे नेत्र धन्य हैं, जो महादेवजी की पूजा का दर्शन करते हैं। वह मस्तक धन्य है, जो शिव के सामने झुक जाता है। वे पैर धन्य हैं, जो भक्तिपूर्वक शिव के क्षेत्रों में सदा भ्रमण करते हैं। जिसकी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ भगवान् शिव के कार्यों में लगी रहती हैं, वह संसारसागर के पार हो जाता है और भोग तथा मोक्ष प्राप्त कर लेता है। शिव की भक्ति से युक्त मनुष्य चाण्डाल, पुल्कस, नारी, पुरुष अथवा नपुंसक कोई भी क्यों न हो तत्काल संसारबंधन से मुक्त हो जाता है।

सा जिह्वा या शिवं स्तौति तन्मनो ध्यायते शिवम्।
तौ कर्णौ तत्कथालोलौ तौ हस्तौ तस्य पूजकौ।।
ते नेत्रे पश्यतः पूजां तच्छिरः प्रणतं शिवे।
तौ पादौ यौ शिवक्षेत्रं भक्त्या पर्यटतः सदा।।
यस्येन्द्रियाणि सर्वाणि वर्तन्ते शिवकर्मसु।
स निस्तरति संसारं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।।

शिवभक्तियुतो मर्त्यश्चाण्डालः पुल्कसोऽपि च।
नारी नरो वा षण्ढो वा सद्यो मुच्येत संसृतेः।। (स्क. पु. ब्राह्म. ब्रह्मोत्तर 5/7-10)*

वहीं पर आगे कहा गया है कि जिन लोगों में थोड़ी सी भी भगवान् शिव की भक्ति है वे अन्य सभी देहधारियों से पूज्य हैं।

भक्तिलेशयुतः शम्भोः स वंद्यः सर्वदेहिनाम्।। (स्क. पु. ब्राह्म. ब्रह्मोत्तर 5/11)*

एक स्थान पर बृहस्पतिजी कहते हैं कि "शिव के चरणारविन्दों में नमस्कार करने के सिवा दूसरी किसी विचारधारा को मैं जीवों के लिये कल्याणकारी नहीं मानता .....। इस सम्पूर्ण विशाल जगत् में भगवान् शिव को सन्तुष्ट करना ही सब पापों का नाशक तथा परम गुणकारी है।"[1]

लोमशजी कहते हैं-सब पापों का नाश हो जानेपर भगवान् शिव में भावना होती है-उनके चिन्तन में मन लगता है। जिनकी बुद्धि पाप से दूषित है उनके लिये शिव की चर्चा भी दुर्लभ है, ...। भगवान् शिव का पूजन दुर्लभ है, ... शिवभक्ति अत्यन्त दुर्लभ है .....। भगवान् शिव की भक्ति करनेवाले महात्मा पुरूषों को त्रिलोकी में कुछ भी दुर्लभ, दुष्प्राय अथवा असाध्य नहीं है। ..... भगवान् शंकर की आराधना ही संसार के मनुष्यों का प्रधान कर्त्तव्य है। जो भगवान् शिव को मस्तक झुकाता है वह उन्हें अवश्य प्राप्त करता है।

सर्वपापक्षये जाते शिवे भवति भावना।।
पापोपहतबुद्धिनां शिवे वार्तापि दुर्लभा।
..... दुर्लभं शिवपूजनम्।।
..... शिवे भक्तिः सुदुर्लभा।
..... न दुर्लभं न दुष्प्रापं न चासाध्यं महात्मनाम्।
शिवभक्तिकृतां पुंसां त्रिलोक्यामिति निश्चितम्।।
..... नृणां प्रधानं कर्तव्यमत्र शिवपूजनमेव भूप।
यस्यांतरायपदवीमुपयांति लोकाःसद्यो नरः शिवनतः शिवमेति सत्यम्।।

(स्क. पु. माहे. कु. 12/53-55, 59, 63)*

महीसागरतीर्थ की महिमा के प्रसंग में कहा गया है कि "भगवान् शिव से बढ़कर कोई देवता नहीं है। ..... जो भगवान् शंकर को छोड़कर अन्य किसी भी वस्तु की उपासना करता है वह हाथ में रक्खे हुए अमृत को त्यागकर मृगतृष्णा की ओर दौड़ रहा है।"[2] भगवान् शिव को जानना ही आत्मज्ञान या कैवल्यप्राप्ति कहा जाता है। भगवान् शंकर ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के आधार हैं, अतः सब कुछ शिवस्वरूप है- यह बात विशेष रूप से जाननी चाहिये। वेद, पुराण, शास्त्र, उपनिषद्,

1. संक्षिप्त स्कंदपुराण. पृ. 569
2. संक्षिप्त स्कंदपुराण. गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 100

आगम और देवता – सबके द्वारा भगवान् सदाशिव ही जानने योग्य हैं। मनुष्य निष्काम हो या सकाम, सबको सदाशिव की आराधना करनी चाहिये। (स्कं. पु. माहे. केदार. अध्याय 5/108 – 110)*

शंभुनाधिष्ठितं सर्वं जगदेतच्चराचरम्।।
तस्मात्सर्वं शिवमयं ज्ञातव्यं सुविशेषतः।
वेदैः पुराणैः शास्त्रैश्च तथौपनिषदैरपि।।
आगमैर्विविधैः शंभुर्ज्ञातव्यो नात्र संशयः।
निष्कामैश्च सकामैश्च पूजनीयः सदा शिवः।।

(स्कं. पु. माहे. केदा. 5/108 – 110)*

महादेवजी थोड़ा सा बिल्वपत्र पाकर भी सदा सन्तुष्ट रहते हैं। फूल और जल अर्पण करने से भी प्रसन्न हो जाते हैं। भगवान् शिव सदा सबके लिये कल्याणरूप हैं। ये पत्र, पुष्प और जल से ही संतुष्ट हो जाते हैं। इसीलिये सबको इनकी पूजा करनी चाहिये। शिवजी इस जगत् में मनुष्यों को सौभाग्य प्रदान करनेवाले हैं।

किञ्चिद्दलेन सन्तुष्टः पुष्पेणापि तथैव च।
तोयेनापि च सन्तुष्टो महादेवो निरन्तरम्।।
पत्रेण पुष्पेण तथा जलेन, प्रीतो भवत्येष सदाशिवो हि।
तस्माच्च सर्वैः परिपूजनीयः, शिवो महाभाग्यकरो नृणामिह।।

(स्कं. पु. माहे. केदा. 27/23 – 24)*

मार्कण्डेयजी किसी प्रसंग में कहते हैं कि जैसे ओषधि स्वभाव से ही रोगों का निवारण करनेवाली है, उसी प्रकार भगवान् शिव भी स्वभाव से ही घोर संसार – बंधन का नाश करनेवाले माने गये हैं। जैसे वैद्य के बिना रोगी क्लेश उठाते हैं, उसी प्रकार भगवान् शिव के बिना सम्पूर्ण जगत् दुःख उठाता है। अतः अनादि, सर्वज्ञ, परिपूर्ण परमशिव ही सबके त्राता हैं। उनके सिवा दूसरा कोई पुरुष इस संसार – समुद्र से रक्षा करनेवाला नहीं है। जो अपने हृदय में भगवान् शिव का चिन्तन करते हुए शिवज्ञान का अभ्यास करते हैं, उन्हें अवश्य ज्ञान प्राप्त होता है (आवन्त्यखण्ड – रेवाखण्ड)।[1]

सूतजी मुनियों से कहते हैं कि मरणधर्मा मनुष्यों के लिये इतना ही सबसे उत्तम एवं सनातन श्रेय है कि भगवान् महेश्वर की कथा में अकारण भक्तिभाव का उदय हो (भगवान् की कथा सुनना या कहना भी नवधा – भक्ति का एक अंग है)।

एतावदेव मर्त्यनां परं श्रेयः सनातनम्।
यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी।। (स्कं. पु. ब्राह्म. ब्रह्मो. 1/5)*

दक्ष पर प्रसन्न होने के बाद भगवान् शिव उन्हें उपदेश देते हुए कहते हैं कि "चार प्रकार के पुण्यात्मा जन मेरा सदा भजन करते हैं – आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। इन सबमें ज्ञानी पुरुष मुझे

1. संक्षिप्त स्कंदपुराण. गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 792

विशेष प्रिय हैं। जो ज्ञान के बिना ही मुझे पाने का यत्न करते हैं, वे अज्ञानी हैं। तुम केवल यज्ञादि कर्म के द्वारा संसार-सागर से पार जाना चाहते हो; परन्तु कर्म में आसक्त हुए मूढ़ पुरुष वेद, यज्ञ, दान और तपस्या से भी मुझे कभी नहीं प्राप्त कर सकते। अतएव तुम अन्तःकरण को एकाग्र करके ज्ञाननिष्ठ होकर कर्म करो। सुख और दुःख में ज्ञानी की भाँति समान भाव रखकर सदा प्रसन्न रहो।

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनः सदा।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च सुरसत्तम।।
तस्मान्मे ज्ञानिनः सर्वे प्रियाः स्युर्नात्र संशयः।
विना ज्ञानेन मां प्राप्तुं यतन्ते ते हि बालिशाः।।
केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्तर्तुमिच्छसि।
न वेदैश्च न यज्ञैश्च न दानैस्तपसा क्वचित्।।
न शक्नुवन्ति मां प्राप्तुं मूढाः कर्म्मवशा नराः।
तस्माज्ज्ञानपरो भूत्वा कुरु कर्म समाहितः।।
सुखदुःखसमो भूत्वा सुखी भव निरन्तर।। (स्कं. पु. माहे. केदा. 5/39-43)*

(1) भगवान् शिव की भक्ति एवं लिंगोपासना

भगवान् शिव को केवल अनन्य भक्ति से जाना जा सकता है। भक्ति के बारे में सनत्कुमारजी व्यासजी को बता रहे हैं कि यह तीन प्रकार की होती है-मानसिक, वाचिक और कायिक। लौकिकी, वैदिकी और आध्यात्मिकी-ये तीन भेद और भी हैं। ध्यान, धारणा एवं बुद्धि के द्वारा जो भगवान् रुद्र के स्वरूपों का स्मरण किया जाता है, वह रुद्र के प्रति भक्तिभाव को बढ़ानेवाली मानसी भक्ति कहलाती है। स्तुति और कीर्तन आदि वाचिकी भक्ति के अन्तर्गत हैं। इन्द्रियों को रोककर संयम में रखनेवाले पुरुषोंद्वारा जो व्रत, उपवास और नियम आदि का पालन किया जाता है-ज्ञान और ध्यान में स्थित धर्मात्मा पुरुषों की वह भक्ति कायिक कही गयी है।(स्कं. पु. आवन्त्यख. आ. मा. 7/5-7)*

गोघृत, दुग्ध तथा दधि, चन्दन, कुंकुम, कुशोदक, गन्ध, विविध माल्य, अनेक प्रकार के धातु, गुग्गल, धूप, कालागुरु, सुगन्धित पदार्थ, सुवर्ण एवं रत्नों के आभूषण, विचित्र माला, वस्त्र, स्तोत्र, पताका, व्यजन, नृत्य, वाद्य, गीत, सब प्रकार के उपहार, भक्ष्य, भोज्य, अनुपान तथा अक्षतों के द्वारा जो पूजा की जाती है, वह लौकिकी भक्ति मानी गयी है। वेदमन्त्रों के द्वारा हविष्य की आहुति आदि के योग से जो यजनक्रिया की जाती है, वह वैदिकी भक्ति कहलाती है। आध्यात्मिकी शिवभक्ति दो प्रकार की है - एक सांख्या भक्ति और दूसरी यौगिकी भक्ति। संख्या से प्रधान(प्रकृति) आदि तत्त्व चौबीस हैं।[1] वे सभी अचेतन तथा चेतन के उपयोग में आने योग्य भोग्य हैं। इनसे भिन्न पुरुष पच्चीसवाँ तत्त्व है, वह चेतन एवं भोक्ता है। भगवान् रुद्र छब्बीसवें तत्त्व हैं। वे कर्त्ता, सर्वज्ञ, चेतन

1. प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, शब्दतन्मात्रा, रूप, रस, स्पर्श एवं गन्ध तन्मात्रा, पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, मन और पंचमहाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश)-ये चौबीस तत्त्व हैं।

और सबके स्वामी हैं। रुद्र के यर्थाथस्वरूप तथा तत्त्वों की तात्त्विक संख्या के स्वरूप का चिन्तन ही आध्यात्मिक सांख्या भक्ति बतायी गयी है। (स्क. पु. आवन्त्य. आ. मा. 7/8-12, 16-26)*

जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को संयम में रखकर सदा प्राणायाम-परायण होकर ध्यान करता है, अथवा जो हृदय में धारणा को स्थिर करके महेश्वर के सगुण या निर्गुणरूप का ध्यान करता है, वह भगवान् रुद्र की 'पराभक्ति' या यौगिकीभक्ति कहलाती है।(स्कं. पु. आव. आ. मा. 7/26-27)*

किसी प्रसंग में लोमशजी इन्द्रद्युम्न से कह रहे हैं कि "ज्ञानेन्द्रियों की बाह्य विषयों में होनेवाली प्रवृत्ति को रोककर उन सबका भगवान् सदाशिव में नित्य लय करना 'अन्तर्योग' कहलाता है। अन्तर्योग का साधन कठिन होने के कारण भगवान् शिव ने स्वयं ही बहिर्योग का इस प्रकार वर्णन किया है, पाँच भूतों के द्वारा भगवान् शिव का पूजन 'बहिर्योग' है, अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश[1]-ये सब भगवान् शिव की पूजा के उपकरण हैं, ऐसा समझकर भावना द्वारा इन्हें भगवान् शिव के चरणों में समर्पित करना, यह बहिर्योग-पूजा की पद्धति है। बहिर्योग विशिष्ट फल देनेवाला और अक्षय माना गया है। (माहेश्व. कुमारि. 12/50-52)*

एक स्थलपर ब्रह्माजी देवाताओं से कहते हैं कि "भगवान् शिव के दर्शन के लिये सदा तीन उपाय हैं-श्रद्धापूर्वक ज्ञान, तपस्या और योग। योगी महादेवजी के कलासहित और कलारहित दोनों स्वरूपों का दर्शन करते हैं। तपस्वी केवल कलायुक्तरूप का और ज्ञानी केवल निष्कलरूप का दर्शन पाते हैं। ज्ञान प्रकट होनेपर भी जिसकी श्रद्धा मन्द है, वह भगवान् का दर्शन नहीं पाता। पराभक्ति से युक्त योगी पुरुष उन परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं।(स्कं. पु. आवन्त्यखण्ड अवन्तीक्षेत्रमाहा. 6/4-7)*

आगे देवताओं ने ब्रह्माजी से कहा-आप हम सब लोगों को ऐसी दीक्षा दीजिये, जो भगवान् शिव को सन्तुष्ट करनेवाली हो। ऐसा निवेदन करने पर ब्रह्माजी ने सम्पूर्ण देवाताओं को व्रतों में श्रेष्ठ दिव्य पाशुपतव्रत का उपदेश किया। महापाशुपतव्रत का वर्णन शिवशाखा में जैसा किया गया है, शास्त्रों में उसकी जैसी विधि बतायी गयी है और जैसे आचार-व्यवहार की शिक्षा दी गयी है, उसके सहित वह शैवव्रत ब्रह्माजी ने देवताओं को बताया। वह व्रत पापों और दु:खों का नाश करनेवाला, पुष्टि और बल बढ़ानेवाला, सुयश बढ़ानेवाला तथा कलियुग के समस्त पापों से छुटकारा दिलानेवाला है। इस व्रत को धारण करनेवाले को भस्म-स्नान करते हुए एकाग्रचित्त, जितेन्द्रिय, शान्त एवं दान्त(दमनशील) भाव से रहना चाहिये। तथा कमण्डलु धारण करना, रुद्राक्ष पहनना तथा अशुभदर्शन, असत् आलाप और आसक्ति आदि से रहित होकर रहना चाहिये। (स्कं. पु. आवन्त्यखण्ड अवन्तीक्षेत्रमाहा. 6/21-24)*

भगवान् शिव ने कपालव्रत(पाशुपतव्रत) चर्या का स्वमुख से इस प्रकार वर्णन किया है-

1. ये सब भगवान् की अष्टमूर्तियों में आते हैं। तथा तीर्थस्थानों में इनके नाम से लिंग भी स्थापित हैं। इन तीर्थों की चर्चा इसी पुस्तक में अन्यत्र की गयी है।

कपाल-पात्र(नारियल के खप्पर) में भोजन करें, हाथ में कपाल(नारियल का कमण्डलु) लिये रहें, सदा सन्तोषपूर्वक रहें और नियमपूर्वक भिक्षान्न का आहार करें। श्मशान(एकान्त) में निवास करें, समस्त प्राणियों के प्रति प्रसन्न रहें, प्रिय और अप्रिय की प्राप्ति में सम रहें, सब अंगों में विभूति को लगाये रक्खें, विशेषतः ज्ञानवान् और जितेन्द्रिय हों, सब प्रकार की आसक्तियों को त्याग दें, मिट्टी, भस्म एवं जलमात्र का संग्रह करें, सदा योगयुक्त रहें, नित्य-निरन्तर जप करें। श्रेष्ठ आसन को जीतें, पवित्र तीर्थ में आश्रम बनाकर रहें, धीरे-धीरे इष्टदेव में चित्त एकाग्र करें। भगवान् शिव कहते हैं कि जैसे मैं सब देवताओं का पूजनीय हूँ उसी प्रकार यह महाव्रत संपूर्ण योगों से पूजनीय है। संसार के बन्धन से छुटकारा दिलाने के लिये यह कल्याणमय व्रत परम पवित्र है क्योंकि यह सम्पूर्ण धर्म के द्वारा मोक्ष का कारण है। (वही 6/89-93, 105)*

किसी प्रसंग में भगवान् विष्णु देवताओं के बीच कह रहे हैं कि कोई-कोई योगमार्ग से भगवान् शंकर की आराधना बताते हैं, परन्तु सदा शून्य(निराकार) की उपासना करनेवाले उन योगियों का मार्ग सर्वसाधारण के लिये दुःसाध्य है। इसलिये जो भोग एवं मोक्ष दोनों चाहता है, उसे लिंगमय स्वरूप की ही आराधना करनी चाहिये। लिंगमय स्वरूप में सम्पूर्ण चराचर जगत् लीन होता है, इसलिये वेद में उसे लिंग कहा गया है। (स्कंद. पु. माहे. कुमारिका. अध्याय 33/26-29)*

शिवलिंगपूजन के सन्दर्भ में लोमशजी कहते हैं-जो विष्णु हैं, उन्हें शिव जानना चाहिये और जो शिव हैं, वे विष्णु ही हैं। पीठिका(आधार अथवा अर्घा) भगवान् विष्णु का रूप है और उसपर स्थापित लिंग महेश्वर का स्वरूप है। अतः शिवलिंग का पूजन सबके लिये श्रेष्ठ है(माहे. केदा. खण्ड-8/20-21)।*

यो विष्णुः स शिवो ज्ञेयो यः शिवो विष्णुरेव सः।।
पीठिका विष्णुरूपं स्याल्लिंगरूपी महेश्वरः।
तस्माल्लिंगार्चनं श्रेष्ठं सर्वेषामपि वै द्विजाः।।

ब्रह्माजी निरन्तर मणिमय, इन्द्र रत्नमय, चन्द्रमा मुक्तामय, सूर्य ताम्रमय, कुबेर चाँदी, वरुण लालरंग, यमराज नीले रंग ..... वायु केसरिया रंग के शिवलिंगों की निरन्तर आराधना करते हैं। इस प्रकार इन्द्रादि समस्त लोकपाल शिवलिगोंपासक हैं। पातालवासी, गंधर्व और किन्नर भी शिवोपासना करते हैं। राक्षसों में बलि, नमुचि, हिरण्यकशिपु, वृषपर्वा आदि तथा शुक्राचार्य और उनके बहुत से शिष्य शिवोपासक हैं। इस तरह प्रायः सभी दैत्य-दानव और राक्षस सदा शिवाराधन में ही रत रहते हैं ..... रावण तथा कुम्भकर्ण आदि श्रेष्ठ राक्षस सदा शिवपूजन में संलग्न रहे हैं। ये सर्वदा शिवलिंग का अर्चन करके उच्चकोटि की सिद्धि को प्राप्त हुए हैं।(माहे. केदा. 8/22-32)।*

जो नित्य लिंगस्वरूप भगवान् शिव की पूजा करते हैं, वे स्त्री, शूद्र, अन्त्यज अथवा चाण्डाल ही क्यों न हो, सम्पूर्ण दुःखों का नाश करनेवाले शिव को अवश्य प्राप्त कर लेते हैं(माहे. केदा.

8/116)।* जो मन को वश में करके भगवान् शिव के ध्यान में तत्पर रहते हैं, उनका मायामय अज्ञान शीघ्र दूर हो जाता है, तथा माया का निवारण हो जाने से तीनों गुणों का लय हो जाता है। इस प्रकार मनुष्य जब गुणातीत हो जाता है, तब वह मोक्ष का भागी होता है। अत: सम्पूर्ण देहधारियों के लिये शिव-लिंग का पूजन कल्याणकारी है। भगवान् शिव लिंगरूप में प्रकट होकर चराचर जगत् का उद्धार करते हैं(माहे. केदा. खण्ड 8/124-128)।* शिवलिंग पूजा की गरिमा को बताते हुए यज्ञमय कर्मकाण्डों को केवल स्वर्ग देनेवाला(न कि मोक्ष) बताया गया है। जबकि लिंगपूजन से व्यक्ति मोक्षतक को प्राप्त कर सकता है(माहे. केदा. खण्ड 8/119-123)।*

शिवपूजन की महिमा बताते हुए लोमशजी कहते हैं कि जो मनुष्य शिवमंदिर के आंगन में झाड़ू लगाते हैं, चँवर भेंट करते हैं या धूप निवेदन करते हैं, दीपदान करते हैं, नैवेद्य निवेदन करते हैं, टूटे हुए शिवमंदिर को पुन: बनवा देते हैं या नूतन मंदिर का निर्माण कराते हैं, शिवमंदिर की सफाई एवं सफेदी करते या करवाते हैं, चँदोवा भेंट करते हैं, और अधिक आवाज करनेवाला घण्टा बाँधते हैं वे सभी पुण्यात्मा हैं तथा नाना प्रकार के लौकिक एवं अलौकिक सुखों को प्राप्त करते हैं(माहे. केदा. खण्ड 5/49-60)।* पुन: कहा गया है कि धनवान् या निर्धन जो कोई भी एक, दो या तीन समय भगवान् शिव का(मंदिर में जाकर) दर्शन करता है, वह सुखी होता है तथा सभी दु:खों से छूट जाता है। जो धार्मिक व्यक्ति आस्थापूर्वक शिव की पूजा करता है वह महात्मा अपने लाखों कुलों को तार देता है और शिवलोक में भगवान् शिव का सांनिध्य प्राप्त कर लेता है(माहे. केदा. खण्ड 5/61-62)।*

एक जगह भगवान् शिव कार्तिकेयजी से कह रहे हैं कि "जो मेरे लिंग की स्थापना करता है और उसके लिये सुन्दर मन्दिर बनवाता है, वह कल्पभर मेरे लोक में निवास करता है। जो मेरे मंदिर में झाड़ू देता है और धूल आदि हटाकर शुद्ध करता है, वह सब रोगों से छूट जाता है। चूने आदि से मंदिर को पुतवाने पर शरीर दृढ़ होता है। पुष्प, दूध आदि, कुशा, तिल, जल, अक्षत और सरसों से भगवान् शंकर के मस्तक पर अर्घ्य देकर मनुष्य 10 हजार वर्षोंतक स्वर्ग में निवास करता है। दही तथा दूध से शिवलिंग को स्नान कराने पर मनुष्य का शरीर निरोग हो जाता है। जल और घी से स्नान कराने पर क्रमश: दसगुना फल प्राप्त होता है। उपर्युक्त वस्तुओं से मुझे स्नान कराकर भक्तिपूर्वक गोधूम-चूर्ण आदि के द्वारा उबटन लगावे, फिर कपिला गाय के पंचगव्य से और गंगा के जल से मुझे स्नान करावे और विधिपूर्वक मेरा पूजन करे। ऐसा करनेवाला परमधाम को प्राप्त होता है। कुशमिश्रित जल से, गन्धमिश्रित जल और उससे भी तीर्थजल श्रेष्ठ है। ताबे, चाँदी और सोने के कलशों से स्नान कराने पर क्रमश: सौ गुना फल होता है। इसी प्रकार चन्दन, अगर, केशर तथा कपूर अर्पण करने से उत्तरोत्तर अधिक फल की प्राप्ति होती है। ..... गुग्गुल का धूप उत्तम माना गया है, उससे श्रेष्ठ अगरु है।" दीपदान, नैवेद्य, अखण्ड बिल्वपत्रों और भाँति-भाँति के पुष्पों से शिवलिंग की पूजा करने के फलों को भी शिवजी वहाँ बताया है। शिवजी को चँवर भेंट करने, मन्दिर

में गीत, वाद्य और नृत्य करने, शंख एवं घंटा दान करने, रथयात्रा का उत्सव करने, नमस्कार एवं प्रणाम करने, शास्त्र का पाठ करने आदि के फलों को भी उन्होंने बताया है। भक्तिपूर्वक स्तुति करने से मोह से मुक्ति, आरती घुमाने से पीड़ा से मुक्ति, शीतल चन्दन अर्पण से दुःखजनित संतापों से मुक्ति हो जाती है। शिवलिंग के समीप दान देने से उसका सौगुना फल प्राप्त होता है। शिवलिंग को प्रणाम करनेपर पन्द्रह, स्नान करानेपर बीस तथा विधिपूर्वक पूजा करने पर सौ अपराध शिवजी क्षमा कर देते हैं (माहेश्वर. कुमा. 34/12-35)।* यद्यपि उपरोक्त बातें भगवान् शिव ने कुमारेश्वर लिंग के माहात्म्य के संदर्भ में कही हैं परन्तु उपरोक्त बातें लिंगोपासना के संदर्भ में सर्वत्र लागू होती हैं।

एक अन्य स्थलपर भगवान् शिव कहते हैं कि ब्रह्मा आदि सब देवता, राजा, महर्षि, मनुष्य और मुनि-ये सभी लोग शिवलिंग का पूजन करते हैं। शिवलिंग की स्थापना करनेवाला मानव ब्रह्महत्या, बालहत्या तथा अन्य पातकों से मुक्त हो जाता है (प्रभा. खण्ड)।[1]

अन्यत्र भगवान् शिव कालभीति से कहते हैं कि जहाँ स्वयम्भू-लिंग हो, वहाँ मैं नित्य निवास करता हूँ। स्वयम्भू-लिंग, रत्नमय-लिंग, धातुज-लिंग, प्रस्तरनिर्मित-लिंग तथा चन्दन आदि लेप-जनित-लिंग हैं। इनमें क्रमशः अन्तिम लिंग की अपेक्षा पूर्व-पूर्ववाले लिंग दस-गुना अधिक फल देनेवाले होते हैं। आकाश में तारकमय-लिंग, पाताल में हाटकेश्वर-लिंग तथा भूमण्डलपर स्वयम्भूलिंग-ये तीन शुभ होते हैं (माहे. कुमा. अध्याय 34/119-121)।[2]

कहा गया है कि तीनों लोकों में महादेवजी से बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है, इसलिये सब प्रकार के प्रयत्नों से सदा शिव की पूजा करनी चाहिये। पत्र, पुष्प, फल अथवा स्वच्छ जल तथा कनेर से भी भगवान् शिव की पूजा करके मनुष्य उन्हीं के समान हो जाता है। आक (मदार) का फूल कनेर से दसगुना तथा आक के फूल से दसगुना धतूरे का फल श्रेष्ठ है। नीलकमल एक हजार कचनार से भी श्रेष्ठ माना गया है। यह चराचर जगत् विभूति से प्रकट हुआ है। वह विभूति भगवान् शिव के श्रीअंगों में भली-भाँति लगती है, इसलिये उसे सदा धारण करना चाहिये (माहे. केदा. खण्ड 5/88-91)।*

शिवजी के आँगन में आरती के समय बजाने के लिये जो नगारा होता है उसकी आवाज से पापी पवित्र हो जाते हैं। पुराण-पाठ, कथा, इतिहास और संगीत आदि नाना प्रकार के आयोजन भगवान् शिव को प्रिय हैं; अतः इनकी व्यवस्था मंदिर में करनी चाहिये। (वही 5/101-102, 104)।*

भगवान् शिव के ऊपर सुशोभित दूसरोंद्वारा चढ़ायी हुई पूजा-सामग्री देखकर जो सन्तोष प्राप्त करता है, वह श्रेष्ठ लोकों में जाता है। जो कार्तिक मास में रात्रि को शिवजी के समीप दीपमाला समर्पित करता है उसे हजारों युगोंतक स्वर्गलोक प्राप्त होता है। नाना प्रकार के तेलों से की गयी दीपमाला के फलों को बताते हुए कहा गया है कि जो कपूर, अगर और धूप से भगवान् शिव की पूजा करते हैं और प्रतिदिन कपूर की आरती उतारते हैं वे सायुज्य-मुक्ति प्राप्त करते हैं। (स्क. पु. माहे.

1. संक्षिप्त स्कंदपुराण.- पृ. 1018

2. संक्षिप्त स्कंदपुराण.- पृ. 124-125

ख. के. ख. 13/41-48)*

आगे कहा गया है कि जो दान के समय, तपस्या में, तीर्थ में और पर्वकाल में आलस्य को छोड़कर रुद्राक्ष-धारणपूर्वक शिव की पूजा करते हैं, उनका पुण्य अक्षय होता है। रुद्राक्ष एक मुख से लेकर 16 मुखतक के होते हैं। उनमें से पंचमुख तथा एकमुख- ये दो प्रकार के रुद्राक्ष मनुष्यों द्वारा धारण करने योग्य एवं श्रेष्ठ समझने चाहिये। जो प्रतिदिन एकमुख रुद्राक्ष धारण करते हैं, उन्हें जीवनमुक्त जानना चाहिये। जो प्रतिदिन पंचमुख रुद्राक्ष धारण करता है, वह रुद्रलोक में जाता और उन्हीं के साथ आनंद का भागी होता है। जप, तप, क्रिया-योग, स्नान और देवपूजा आदि जो भी शुभ कर्म किया जाता है, वह रुद्राक्षधारण से अनन्त फल देनेवाला हो जाता है। (वही 13/50-53)*

जो मन्त्र-पूत विभूति से अपने ललाट में त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, वे रुद्रलोक में रुद्र होंगे। कपिला गाय के गोबर को भूमिपर गिरने से पहले ही हाथपर ले ले और उसे सुखाकर विभूति के लिये संग्रह करे। विभूति सब पापों का नाश करनेवाली बतायी गयी है। पहले ललाट में प्रयत्नपूर्वक अँगूठे से एक रेखा बनानी चाहिये। फिर मध्यमा अँगुली को छोड़कर अनामिका और तर्जनी- इन दो अँगुलियों से दो रेखाएँ खींचे। इस प्रकार जिसके ललाट में तीन स्पष्ट रेखाएँ देखी जाती हैं, उस शिवभक्त को साक्षात् शिव के ही समान जानना चाहिये। वह दर्शनमात्र से समस्त पापों का नाश करनेवाला है। शिवभक्तों को जटा रखनी चाहिये। जटा की पाँच, सात या नौ लटें रखनी चाहिये। शैवशास्त्र के अनुसार जटा रखनेवाला अवश्य ही शिव को प्राप्त कर लेता है(स्क. माहे. केदा. 13/56-61)।*

एक स्थल पर यमराज अपने दूतों से कहते हैं "दूतगण! संसार में जो लोग विभूति के द्वारा त्रिपुण्ड्र धारण करते हैं, मस्तकपर जटा और गले में रुद्राक्ष धारण करते हैं, ऐसे लोगों को तुम कभी मेरे लोक में नहीं लाना। जो भक्तिभाव से भगवान् शिव का पूजन करते हैं, वे साक्षात् रुद्र के ही स्वरूप हैं। जो मस्तक पर एक रुद्राक्ष धारण करते, ललाट में त्रिपुण्ड्र लगाते तथा जो साधु पुरुष पंचाक्षर मन्त्र(**नमः शिवाय**) का सदा जप करते हैं, वे सब तुम्हारे द्वारा पूजनीय हैं। जिस राष्ट्र, देश अथवा ग्राम में शिवभक्त नहीं देखा जाता, वह श्मशान से भी बढ़कर अशुभ है।"(माहे. केदा. 32/80-85)*

पवित्र बुद्धिवाले ज्ञानी पुरुषों को भी अनेक जन्मों के पश्चात् भगवान् शिव की भक्ति प्राप्त होती है। इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि वे सदैव भगवान् सदाशिव का सेवन, वन्दन एवं पूजन करें(माहे. केदा. 32/94-95)।*

शिवलिंग की पूजा एवं परिक्रमा विधिपूर्वक करनी चाहिये। इन्द्र ने प्रदोषव्रत का अनुष्ठान वृत्रासुर के ऊपर विजय पाने के लिये किया था परन्तु लिंगपूजा के उपरान्त होनेवाली परिक्रमा में उन्होंने गलती कर दी थी इसलिये उन्हें वृत्रासुर ने निगल लिया था। अत: परिक्रमा करते समय अथवा अन्य समय में भी शिवनिर्माल्य(पूजोपरान्त जो सामग्री लिंग पर होती है), अर्घा, शिवलिंग की छाया तथा देवमन्दिर का लंघन नहीं करना चाहिये। लंघन करनेवाला शिव-गणों में प्रधान चण्ड के द्वारा

दण्डनीय है। इसलिये सावधानीपूर्वक लिंग की परिक्रमा एवं नमस्कार करना चाहिये(माहे. केदा. 17/243-246)।*

लिंगपूजा में कनेर, मदार, भटकटइया, धतूर, शतपत्र, अमलतास, पुन्नाग(सँदेसरा), मौलसिरी, नागकेसर, नीलकमल, कदम्ब, आक तथा नाना प्रकार के कमल आदि पुष्प तीनों काल में(सुबह, दोपहर एवं शाम) सदा पवित्र जानने चाहिये। चमेली, बेला, सेवती, श्यामपुष्प, कुटज, कर्णिकार, कुसुम्भ, लाल कमल-ये पुष्प विशेषतः मध्याह्नकाल में शिवलिंगपूजन में श्रेष्ठ बताये गये हैं। कमल के फूल तीनों काल में पवित्र माने गये हैं। रात्रि में केवल कुमुद(मोगरा) के फूल विशेष पवित्र बताये गये हैं। चंपा भी तीनों काल में पवित्र है। इस प्रकार पूजा-भेद को जानकर शिवलिंग का पूजन करना चाहिये। विधिज्ञ पुरुषों को शिवालय में सदा शास्त्रीय विधि का पालन करना चाहिये। शिवलिंग एवं नन्दीकेश्वर के बीच में होकर अथवा अर्घान्तर की परिक्रमा नहीं करनी चाहिये। यदि कोई करता है तो पाप का भागी होता है(माहे. केदा. 17/252-259)।*

एक जगह सोमनाथ की पूजा के सन्दर्भ में बताया गया है कि नागकेशर, चम्पा, श्वेतकमल और धतूर के फूल शिव-पूजा के लिये उत्तम होते हैं। केतकी, अतिमुक्त (मरुआ), कुन्द, जूही, सिरस, शाल और जामुन के फूलों को शिव-पूजा में त्याग देना चाहिये। धतूर और कदम्ब के फूल रात में शिवजी के ऊपर नहीं चढ़ाने चाहिये। शेष जो फूल बताये गये हैं उनका उपयोग दिन को करना चाहिये। मल्लिका (बेला) का फूल दिन एवं रात दोनों में चढ़ाना चाहिये। जिसमें कीड़े और केश आदि पड़ गये हों, जो रात के तोड़े हुए होने से बासी हो गये हों, जो अपने आप टूटकर गिरे हों अथवा कुचल गये हों-ऐसे फूलों को त्याग देना चाहिये। (संक्षिप्त स्कंदपु. प्रभासखण्ड अध्याय 22 पृ. 965)

वृत्रासुर द्वारा इन्द्र के निगल जाने के बाद देवताओं ने प्रतिदिन महारुद्र-विधान के अनुसार शिवलिंग पूजन किया। फलस्वरूप इन्द्र वृत्रासुर का पेट फाड़कर बाहर आ गये और उसपर विजय पायी। इस पुराण में शिवपूजा की विस्तृत विधि का उल्लेख माहेश्वरखण्ड-कुमारख. (अध्याय 41)* में किया गया है।

(2) शिवनाममहिमा एवं पंञ्चाक्षर मन्त्र

सगुण-साकार की पूजा, चाहे वह लिंगपूजा हो चाहे भगवान् शिव की मूर्ति की, में नामजप का बड़ा ही महत्त्व सभी शास्त्रों में बताया गया है। सूतजी कहते हैं कि समस्त पुण्यों, श्रेय के सम्पूर्ण साधनों और समस्त यज्ञों में जपयज्ञ सर्वोत्तम है।

सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः।। (स्कं. पु. ब्राह्म. ब्राह्मो. 1/7)*

जप तीन तरह का होता है-वाचिक, उपांशु तथा मानसिक। वाचिक जप में जोर-जोर से बोलकर जप किया जाता है, उपांशु में मात्र होठ हिलते हैं जबकि मानसिक जप में जिह्वा एवं होठ

का प्रयोग न कर केवल भावना द्वारा जप किया जाता है। इस पुराण में कहा गया है कि विधिपूर्वक किये हुए यज्ञ से जपयज्ञ दसगुना उत्तम है। उपांशु जप (सूक्ष्म स्वर से उच्चारण किया हुआ जप) उससे सौगुना फल देनेवाला है। उपांशु जप की अपेक्षा भी सहस्रगुना महत्त्व मानस-जप का माना गया है।

विधिक्रतोर्दशगुणो जपक्रतुरुदीरितः।।
उपांशुस्तच्छतगुणः सहस्रो मानसस्ततः।। (स्कं. पु. काशी. पूर्व. 36/48-49)*

लोमशजी शिवमहिमा का गुणगान करते हुए ऋषियों से कहते हैं कि "जो लोग 'शिव' इस दो अक्षर के नाम का उच्चारण करेंगे, उन्हें स्वर्ग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त होंगे-इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।"

शिवेति द्वयक्षरं नाम व्याहरिष्यन्ति ये जनाः।
तेषां स्वर्गश्च मोक्षश्च भविष्यन्ति न चान्यथा।।

(स्कं. पु. माहे. केदार. 1/14)*

"जो सदा कल्याण करनेवाले भगवान् शिव का भजन करते हैं, वे धन्य हैं। जो लोग सदा शिव की कृपा के विना भवसागर को पार करना चाहते हैं वे मूर्ख, पापी एवं भ्रमित हैं। जिन्होंने (दूसरों की रक्षा के लिये) विषभक्षण किया, दक्षयज्ञ का विनाश किया, काल को दग्ध कर डाला और राजा श्वेत को संकट से छुड़ाया, उन महादेवजी की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है।" (स्कं. पु. माहे. केदा. 1/16-18)*

ते धन्यास्ते महात्मानो ये भजंति सदा शिवम्।।
विना सदाशिवं यो हि संसारं तर्तुमिच्छति।
स मूढो हि महापापः शिवद्वेषी न संशयः।। (स्कं. पु. माहे. केदा. 1/16-17)*

शिवपूजन की महिमा के प्रसंग में लोमशजी कहते हैं कि 'शिव' यह दो अक्षरों का नाम महापातकों का भी नाश करनेवाला है। जिन मनुष्यों के मुख से 'शिव' नाम का जप होता रहता है, उन्होंने ही सम्पूर्ण जगत् को धारण किया है (स्कं. पु. माहे. केदार. 5/100)।*

शिवेति द्वयक्षरं नाम महापापप्रणाशनम्।
येषां मुखोद्गतं नृणां तैरिदं धार्यते जगत्।।

प्रभासखण्ड में एक स्थलपर कहा गया है कि "सब लोक शिवमय हैं और सबकुछ शिव में ही प्रतिष्ठित है। इसलिये जो अपना कल्याण चाहे, भगवान् शिव के ही नामों का जप करे (संक्षिप्त स्कं. पु. पृ. 1018)।

जिनकी जिह्वा के अग्रभागपर सदा भगवान् शंकर का दो अक्षरोंवाला नाम (शिव) विराजमान रहता है वे धन्य हैं, वे महात्मा पुरुष हैं तथा वे ही कृतकृत्य हैं। आज भी जिन्होंने 'शिव' इस अविनाशी नाम का उच्चारण किया है, वे निश्चय ही मनुष्यरूप में रुद्र हैं; इसमें संशय नहीं है।

ते धन्यास्ते महात्मानः कृतकृत्यास्तथैव च।।
द्व्यक्षरं नाम येषां च जिह्वाग्रे संस्थितं सदा।
शिव इत्यक्षरं नाम यैरुदीरितमद्य वै।
ते वै मनुष्यरूपेण रुद्राः स्युर्नात्र संशयः।।

(स्कं. पु. माहे. केदा. 27/21-22)*

अनजान में भी अगर भगवान् शिव का नाम ले लिया जाय तो उसका महान् फल होता है। राजा इन्द्रसेन ने अनजान में(अन्य अक्षरों के साथ-साथ जैसे 'आहर', प्रहरस्व आदि) भगवान् हर का नाम लेने के कारण शिवलोक गया तथा वहाँपर 'चण्ड' नामक गण बना, यद्यपि इन्द्रसेन बड़ा ही पापी था।(स्कं. पु. माहे. के. 5/64-86)*[1]

अतः संसर्गवश, कौतुहलवश अथवा लोभ से भी भगवान् शंकर के प्रति किये हुए नमस्कार, स्तुति, पूजा तथा नामसंकीर्तन कभी विफल नहीं होते।(स्कं. पु. माहे. कुमा. 41/79)*

नमस्कारः स्तुतिः पूजा नामसंकीर्तनं तथा।
संपर्कात्कौतुकाल्लोभान्न तस्य विफलं भवेत्।।

भगवान् शिव के महामंत्रों में सबसे सरल एवं प्रमुख पंचाक्षर या षडक्षर मंत्र है। इसकी अनेक ग्रन्थों में बड़ी महिमा गायी गयी है। इस मन्त्र की महिमा के बारे में लोमशजी कहते हैं कि- "जिनके मुख से **'नमः शिवाय'** यह पंचाक्षर मन्त्र सदा उच्चारित होता रहता है, वे मनुष्य भगवान् शंकर के स्वरूप हैं।"(स्कं. पु. माहे. केदा. 5/96)*

कार्तिकेयजी नन्दी से कह रहे हैं कि जिसके मुख में सदा(**'नमः शिवाय'** इस) पंचाक्षर मन्त्र का जप होता रहता है, जिसका चित्त सदा भगवान् शिव के चिन्तन में संलग्न रहता है, जो सब प्राणियों के प्रति समभाव रखता है, दूसरों की निन्दा में जिसकी वाणी मूक रहती है तथा जो परायी स्त्रियों के प्रति अपने में नपुंसक भाव ही रखता है, ऐसे उपासक पर भगवान् शिव की विशेष कृपा होती है।(स्कं. पु. माहे. केदार. 31/106)*

सूतजी ऋषियों को समझाते हुए कह रहे हैं कि जैसे सब देवताओं में त्रिपुरारि भगवान् शंकर श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार सब मन्त्रों में शिव का षडक्षर मन्त्र श्रेष्ठ है। उसी को प्रणव से रहित होनेपर पंचाक्षर मन्त्र भी कहते हैं। वह जप करनेवाले पुरुषों को मोक्ष देनेवाला है। सिद्धि की इच्छा रखनेवाले सब श्रेष्ठ मुनि इस मन्त्र का सम्यग् रूप से सेवन करते हैं। शिवजी के शुभ पंचाक्षर मन्त्र में सर्वज्ञ, परिपूर्ण, सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् शिव सदा रमते रहते हैं। यह मन्त्रराज सम्पूर्ण उपनिषदों का आत्मा है। इसके जप से सब मुनियों ने निरामय परब्रह्म का साक्षात्कार किया है। **'नमः शिवाय'** मन्त्र में **'नमः'** पद के अर्थभूत नमस्कार के द्वारा जीवभाव परमात्मा शिव में मिलकर तद्रूप हो जाता है। अतः

1. इस तरह की कथा पदम् पुराण के पातालखण्ड के 111 वें अध्याय में भी आती है।

वह मन्त्र साक्षात् परब्रह्मस्वरूप है। संसार-बन्धन में बँधे हुए लोगों के हित की कामना से स्वयं भगवान् शिव ने **'ॐ नमः शिवाय'** इस आदिमन्त्र का प्रतिपादन किया है। जिसके हृदय में यह मन्त्र निवास करता है, उसके लिये बहुत से मन्त्र, तीर्थ, तप और यज्ञों की क्या आवश्यकता है? (स्क. पु. ब्रा. ब्रह्मो. 1/9-16)*

किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः।
यस्योंनमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः।। (स्कं. पु. ब्राह्म. ब्रह्मो 1/16)*

देहधारी मनुष्य तभीतक दुःखों से भरे हुए इस भयंकर संसार में भटकते हैं, जबतक कि वे एक बार भी इस षडक्षर मन्त्र का उच्चारण नहीं करते। यह मन्त्र संपूर्ण ज्ञानों की निधि है यह मोक्षमार्ग को प्रकाशित करनेवाला दीपक, अविद्या के समुद्र को सोखनेवाला बड़वानल और महापातकों के जंगल को जला डालनेवाला दावानल है। यह मन्त्र सब कुछ देनेवाला माना गया है। इसे मोक्ष की अभिलाषा रखनेवाले स्त्री-समुदाय, शूद्र और वर्णसंकर भी धारण कर सकते हैं। इस मन्त्र के लिये दीक्षा, होम, संस्कार, तर्पण, समय-शुद्धि तथा गुरुमुख से उपदेश आदि की आवश्यकता नहीं है। यह मन्त्र सदा पवित्र है। (स्क. पु. ब्रा. ब्रह्मो. 1/17-21)*

तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च संकीर्णैर्धार्यते मुक्तिकांक्षिभिः।।
नास्य दीक्षा न होमश्च न संस्कारो न तर्पणम्।
न कालो नोपदेशश्च सदा शुचिरयं मनुः।। (स्क. पु. ब्राह्म. ब्राह्मो. 1/20-21)*

'शिव' यह दो अक्षर का मन्त्र ही बड़े-बड़े पातकों का नाश करने में समर्थ है और उसमें **'नमः'** पद जोड़ दिया गया, तब तो वह मोक्ष देनेवाला हो जाता है। जो गुरु निर्मल, शान्त, साधु, स्वल्पभाषी, काम-क्रोध से रहित, सदाचारी और जितेन्द्रिय हों, उनके द्वारा दयापूर्वक दिया हुआ मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार काशी, प्रयाग, पुष्कर, केदार, सेतुबन्ध, गोकर्ण और नैमिषारण्य आदि पुण्यक्षेत्र मनुष्यों को शीघ्र सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं।(स्क. पु. ब्रा. ब्रह्मो. अध्याय 1/22-27)*

महापातकविच्छित्त्यै शिव इत्यक्षरद्वयम्।
अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते।।
उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने।
सद्यो यथेप्सितां सिद्धिं ददातीनि किमदभुतम्।। (स्क. पु. ब्राह्म. ब्राह्मो. 1/22-23)*

जैगीषव्य मुनि भगवान् शिव की स्तुति करते हुए उनकी अन्य विशेषताओं के अतिरिक्त यह भी बताते हैं कि वे पशुओं के पाश को मुक्त करनेवाले हैं तथा उनके नाम का उच्चारण करनेमात्र से सभी महापातकों का विनाश हो जाता है।

पशुपाशविमोक्षाय पशुनांपतये नमः।

नामोच्चारणमात्रेण महापातकहारिणे।। (स्क. पु. काशीख. उत्त. 63/50)*

षडक्षर मन्त्र की महिमा में अन्यत्र कहा गया है कि जो श्रद्धापूर्वक भगवान् शिव के षडक्षर मन्त्र का जप करता है, उसका ब्रह्महत्याजनित पाप नष्ट हो जाता है। दस बार षडक्षर मन्त्र के जप से एक दिन का और बीस बार के जप से मनुष्य एक वर्ष का पाप धो डालता है। यह मन्त्र मनुष्यों का सब पाप और अमंगल हर लेता है। यह मन्त्र परम गोपनीय कहा गया है। किसी नास्तिक को इसका उपदेश नहीं करना चाहिये।(संक्षिप्त स्कं. पु. नागरखण्ड अध्याय 29 पृ. 844)

मन्त्र-जप में श्रद्धा-भक्ति का महत्त्व है। जैसे श्रद्धा-भक्ति से पूजा करनेपर अज्ञानी गुरु भी सिद्धिदायक हो जाता है उसी प्रकार श्रद्धा से जप किया हुआ मन्त्र अव्यवस्थित होनेपर भी फलदाता होता है। श्रद्धा से पूजा करनेपर देवता नीच पुरुष को भी फल देनेवाले होते हैं। अश्रद्धा से की हुई पूजा, दान, यज्ञ, तप और व्रत सभी निष्फल होते हैं, जैसे बाँझ वृक्ष का फूल व्यर्थ होता है। जो सर्वत्र संशययुक्त, श्रद्धाहीन और अत्यन्त चपल होता है, वह परमार्थ से भ्रष्ट होकर संसार-बन्धन से मुक्त नहीं हो पाता। मन्त्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, ओषधि तथा गुरु में जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसी सिद्धि प्राप्त होती है। अतः पंचाक्षर या शिव-मन्त्र का जप तभी पूर्ण फलप्रद होगा जब वह श्रद्धा-भक्ति से जपा जाय।

श्रद्धैव सर्वधर्मस्य चातीव हितकारिणी।
श्रद्धयैव नृणां सिद्धिर्जायते लोकयोर्द्वयोः।।
श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी।
मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति सिद्धिदः।।
.....
अश्रद्धया कृता पूजा दानं यज्ञस्तपो व्रतम्।
सर्वं निष्फलतां याति पुष्पं बन्ध्यतरोरिव।।
.....
मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यत्र सिद्धिर्भवति तादृशी।। (स्कं. पु. ब्रा. ब्रह्मो. 17/3-8)*

(3) भगवान् शिव के स्तोत्र एवं कवच

स्कंद पुराण में अन्य ग्रन्थों की भाँति भगवान् शिवसंबंधी अनेक स्तोत्र एवं पाठ करने योग्य सामग्री पायी जाती है। इन सबमें पौराणिक शतरुद्रिय तथा(अमोघ) शिवकवच काफी प्रचलित हैं। भर्तृयज्ञ द्वारा शतरुद्रिय सुनकर शिव की आराधना से इन्द्रद्युम्न आदि भक्तों को शिवसारूप्य की प्राप्ति हुई थी। भगवान् शिव का उत्तम माहात्म्य 'शतरुद्रिय' के नाम से प्रसिद्ध है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर इस शतरुद्रिय का पाठ करता है, उसपर प्रसन्न हो भगवान् शिव उसे सभी मनोवांछित वर

प्रदान करते हैं। पृथ्वीपर इससे बढ़कर पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण वेदों का रहस्य है। भगवान् सूर्य ने भतृयज्ञ को इसका उपदेश दिया था। इसके पाठ से मन, वाणी और क्रिया द्वारा आचरित समस्त पापों का नाश हो जाता है। इसके जप से रोगी रोग से, वन्दी कारागार से और भयभीत भय से मुक्त हो जाता है। इन सौ नामों का उच्चारण करके जो विद्वान् उतने ही फूलों द्वारा भगवान् शिव की पूजा करता है और सौ बार प्रणाम करता है, वह सब पातकों से मुक्त हो जाता है। विशेषत: जो महीसागर- संगम-तीर्थ के पाँच लिंगों के समक्ष इस शतरुद्रिय का पाठ करेगा, वह पंचविषय-जनित दोषों से मुक्त हो जायगा। यह शतरुद्रिय इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया हुआ है। (यह स्कन्द पुराण के माहेश्वरखण्ड-कुमारिकाखण्ड के अध्याय 13/144-194 में वर्णित है)*

किसी शिवयोगी ने भद्रायु को शिवकवच का उपदेश किया था। यह कवच सब बाधाओं को शान्त करनेवाला तथा निर्भय बनानेवाला है। जिसकी आयु क्षीण हो गयी है, जो मरणासन्न है अथवा महान् रोग से मृत-प्राय हो रहा है, वह भी इस कवच के धारण करने से तत्काल सुखी होता है और दीर्घ आयु पाता है। इस कवच का वर्णन भी इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। यह कवच स्कन्द पुराण के ब्राह्मखण्ड के ब्रह्मोत्तर उपखंड के 12 वें अध्याय (श्लोक 1-28)* में वर्णित है।

शतरुद्रिय एवं शिव कवच के अलावा अन्य कई उपयोगी स्तोत्र भी इस पुराण में पाये जाते हैं। तारकासुर के वध से उत्पन्न पाप एवं शोक(जिसका कारण तारकासुर जैसे शिवभक्त को मारना था) की निवृत्ति के लिये स्कन्दजी ने महीसागर-तटपर शिवलिंग की स्थापना कर भगवान् शिव की स्तोत्र द्वारा पूजा की। तदनन्तर अपने स्तवन को सुनकर शिवजी ने उन्हें वरदान दिया। जो लोग सायं और सबेरे भक्तिपूर्वक स्कंद द्वारा की गयी स्तुति से शिवजी का स्तवन करेंगे उनको कोई रोग, प्रियजनों से वियोग तथा दरिद्रता नहीं होगी तथा संसार में दुर्लभ भोगों का उपभोग करके वे शिवधाम को प्राप्त करेंगे। उन्हें भगवान् शिव दुर्लभ वर भी प्रदान करेंगे। (स्क. माहे. कुमा. 34/40-47)*

विश्वानर मुनि ने पुत्र के लिये भगवान् शिव की उपासना की थी। उपासना से प्रसन्न हो भगवान् शिव उनके समक्ष बालकरूप में प्रकट हो गये। उस बालकरूप शिव की स्तुति में मुनि ने अभिलाष्टक स्तोत्र पढ़ा। फलस्वरूप भगवान् शिव ने स्वयं पुत्ररूप में उनकी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न हो गृहपति नाम धारण किया। इसी गृहपति ने कालांतर में शिव की आराधना से दिक्पाल के पद को प्राप्त किया। अभिलाष्टक स्तोत्र को अगर तीनों समय भगवान् शिव के समीप पढ़ा जाय तो यह सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाला होता है। उसका पाठ पुत्र, पौत्र, धन, सब प्रकार की शान्ति तथा संपूर्ण आपत्तियों का नाशक है। स्वर्ग, मोक्ष तथा संपत्ति प्रदान करनेवाला है। एक वर्षतक पाठ करने पर यह स्तोत्र पुत्र प्रदान करता है। यह स्तोत्र इसी पुस्तक में अन्यत्र दिया गया है। यह स्तोत्र शिव पुराण में भी पाया जाता है। यह स्तोत्र स्कंद पुराण के काशीखण्ड-पूर्वार्द्ध के 10वें अध्याय(श्लोक 26-33)* में पाया जाता है।

बृहस्पतिजी ने एक बार काशी में शिवजी की मूर्ति स्थापित कर भारी तपस्या की। जब भगवान् शिव ने प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हो वर माँगने के लिये कहा तब बृहस्पतिजी ने उनकी स्तुति की। जिस स्तोत्र से उन्होंने शिवजी की स्तुति की, उसकी महिमा में भगवान् शिव कहते हैं कि तीन वर्षोंतक तीनों समय इस स्तोत्र का पाठ करने से जिस पुरुष के प्रति सरस्वती उदित हों, उसकी वाणी संस्कृत होगी। इसके पाठ से किसी की दुराचार में प्रवृत्ति नहीं होगी। इस स्तोत्र को जानने की रुचि रखनेवाले को स्कंद पुराण, काशीखण्ड (पूर्वार्द्ध) का अध्याय 17 (श्लोक 34-41)* देखना चाहिये।

पूर्वकाल में पंचगंगा तीर्थ में सूर्यदेव ने गभस्तीश्वर महालिंग एवं मंगला गौरी को उग्र तपस्या से संतुष्ट किया। फलस्वरूप शिवजी वर देने के लिये प्रस्तुत हुए। उन्हें देखकर सूर्यदेव ने शिवजी का चौसठ नामों से युक्त अष्टक स्तोत्र से स्वागत किया। इस स्तोत्र की महिमा के बारे में शिवजी कहते हैं कि यह श्रेष्ठ, पुण्यमय तथा सब पातकों का नाशक है। जो काशी से दूर देश में रहता है, वह भी यदि प्रतिदिन तीनों समय इसका पाठ करता है तो वह श्रेष्ठ एवं शुद्ध चित्त होकर दुर्लभ काशी को प्राप्त होगा। यह स्तोत्र काशी में मोक्ष प्रदान करता है। अतः मोक्षाकांक्षी को प्रयत्नपूर्वक अनेक स्तोत्रों को छोड़कर इसका पाठ एवं जप करना चाहिये। इस स्तोत्र की जानकारी के लिये स्कन्द पुराण के काशीखण्ड-पूर्वार्द्ध के अध्याय 49 (श्लोक 46-53)* को देखें।

काशी में जैगीषव्य मुनि ने भगवान् शिव के दर्शन देनेपर उत्तम स्तोत्र द्वारा उनकी स्तुति की। इस स्तुति से योगसिद्धि में सहायता मिलती है, बड़े-बड़े पापों का नाश होता है तथा पुण्य की वृद्धि, भय की शान्ति और महाभक्ति की वृद्धि होती है। इसके जापक को कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती। इस स्तोत्र की जानकारी के लिये स्कन्द पुराण-काशीखण्ड-उत्तरार्द्ध-अध्याय 63 (श्लोक 32-66)* देखें।

एक बार ब्रह्माजी ने काशी में ओंकारेश्वर लिंग को सहस्र युग की तपस्या के बाद संतुष्ट कर उनकी स्तोत्र-विशेष से स्तुति की। उस स्तुति का जप करनेवाला सब पापों से मुक्त हो महान् पुण्य तथा श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त कर सकता है। यह स्तोत्र भी स्कंद पुराण के काशीखण्ड-उत्तरार्द्ध (अध्याय 73/1-40)* में मिलता है। पुनः आवन्त्य खण्ड में किसी प्रंसग में ब्रह्माजी ने ॐकाररूप महेश्वर की स्तुति 101 नामों द्वारा की थी। इसके माहात्म्य के बारे में कहा गया है कि इस रुद्र-स्तोत्र के पाठ से इहलोक एवं परलोक में व्यक्ति समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। इसके पाठ से मनुष्य स्वर्ग में जाता है। यह स्तोत्र संक्षिप्त स्कन्द पुराण. के आवन्त्यखण्ड के रेवाखण्ड, अध्याय 47 (पृ. 784-785) में पाया जाता है।

(4) कुछ प्रसिद्ध शैव-व्रत

भगवान् शिव-संबंधी प्रचलित व्रतों में शिवरात्रि, प्रदोष और सोमवार ज्यादा प्रमुख हैं। हम यहाँ इन्हीं व्रतों की चर्चा करेंगे। जो नित्य, आनंदमय, शान्त, निर्विकल्प, निरामय, अनादि, अनन्त,

शिवतत्त्व को जानते हैं, वे परम पद को प्राप्त होते हैं। जो धीर पुरुष कामभोगों से विरक्त हो भगवान् शंकर की हेतुरहित पराभक्ति करते हैं, उनका भी मोक्ष हो जाता है, वे संसारबंधन में नहीं पड़ते। जो मायामय संसार में चिरकालतक सुखपूर्वक विहार करके देहावसान होनेपर मोक्ष चाहते हैं, उनके लिये यह धर्म बताया गया है कि वे भगवान् शिव की पूजा करें। यदि प्रदोष आदि के गुणों से युक्त सोमवार के दिन यह पूजा की जाय तो उसका विशेष माहात्म्य है। जो केवल सोमवार को भी भगवान् शंकर की पूजा करते हैं, उनके लिये इहलोक और परलोक में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। सोमवार को उपवास करके पवित्र हो इन्द्रियों को वश में रखते हुए वैदिक अथवा लौकिक मन्त्रों से विधिपूर्वक भगवान् शिव की पूजा करनी चाहिये। ब्रह्मचारी, गृहस्थ, कन्या, सुहागिन स्त्री अथवा विधवा कोई भी क्यों न हो, भगवान् शिव की पूजा करके मनोवांछित वर पाता है। सोमवारव्रत के संदर्भ में सीमन्तिनी (जो राजा नल एवं दमयन्ती की पुत्रवधु थी) की कथा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस व्रत के प्रभाव से उसने अपने वैधव्य को पराजित कर सौभाग्य को प्राप्त किया। इस व्रत का उल्लेख स्कन्द पुराण के ब्राह्मखण्ड के ब्रह्मोत्तरखंड (के अध्याय 8-9)* में किया गया है।

त्रयोदशी तिथि में सांयकाल को प्रदोष कहा गया है। प्रदोष के समय महादेवजी कैलास पर्वत के रजत भवन में नृत्य करते हैं और देवता उनके गुणों का स्तवन करते हैं। अत: चारों पुरुषार्थों - अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले को प्रदोष में नियमपूर्वक भगवान् शिव की पूजा, उनके निमित्त होम, उनकी कथा और उनका गुणगान करना चाहिये। दरिद्रता के तिमिर से अन्धे और भवसागर में डूबे हुए संसारभय से भीरु मनुष्यों के लिये यह प्रदोषव्रत पार लगानेवाली नौका है। जो प्रदोषकाल में अनन्यचित्त होकर शिवजी के चरणों की पूजा करते हैं, वे इसी संसार में सदा बढ़नेवाले धन-धान्य, स्त्री-पुत्र, सौभाग्य और सम्पत्ति के द्वारा सबसे बढ़कर होते हैं। प्रदोषव्रत की विधि आदि के बारे में जानकारी इसी पुस्तक में अन्यत्र दी गयी है। स्कन्द पुराण के ब्राह्मखण्ड के ब्रह्मोत्तरखण्ड के अध्याय 7* तथा माहेश्वरखण्ड के केदारखण्ड के अध्याय 17* में विस्तार से प्रदोषपूजाविधि दी गयी है। इस व्रत के प्रभाव से लाभान्वित होनेवाले द्विजकुमार एवं राजकुमार धर्मगुप्त की कथा का उल्लेख भी उक्त अध्यायों में है।

जिस प्रकार गणेशजी को चतुर्थी, नागराज को पंचमी, कार्तिकेय को षष्ठी, सूर्यदेव को सप्तमी दुर्गाजी को नवमी, ब्रह्माजी को दशमी, रुद्रदेव को एकादशी, भगवान् विष्णु को द्वादशी, कामदेव को त्रयोदशी प्रिय है उसी प्रकार भगवान् शंकर को अष्टमी एवं चतुर्दशी (विशेषरूप से) प्रिय है। कृष्णपक्ष में जो चतुर्दशी अर्धरात्रिव्यापिनी हो, उसमें सबको उपवास करना चाहिये। वह भगवान् शिव का सायुज्य प्रदान करनेवाली है। वह शिवरात्रि नाम से विख्यात है।

निशीथसंयुता या तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
उपोष्या सा तिथिः श्रेष्ठा शिवसायुज्यकारिणी।। (स्क. पु. माहे. केदा. 33/82)*

यह सब पापों का नाश करनेवाली है। इस विषय में एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया जाता है। पूर्वकाल में कोई विधवा ब्राह्मणी थी। उसके गर्भ से दुरात्मा चाण्डाल के संसर्ग से दुस्सह नामक घोर पापी पुत्र का जन्म हुआ। एक दिन वह अधर्मी-पापी मन में कोई बुरी वृत्ति लेकर किसी शिवालय में गया। उस दिन शिवरात्रि थी। वह रात में भगवान् शिव के पास उपवासपूर्वक रहा और वहाँ पास ही दैवात् होती हुई शैवशास्त्र की कथा सुनता रहा। वहाँ उसे लिंगस्वरूप भगवान् शिव का दर्शन भी हुआ। दुष्ट होते हुए भी उसने एक रात व्रत किया और शिवरात्रि में जागता रहा। उसी शुभकर्म के परिणाम से उसने पुण्ययोनि प्राप्त करके बहुत वर्षोंतक पुण्यात्माओं के लोक में सुख-भोग किया। तदनन्तर वह राजा चित्रांगद का पुत्र हुआ जो विचित्रवीर्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके अन्दर भक्तिभाव की वृद्धि उत्तरोत्तर होती गयी। फलस्वरूप शिवध्यान में निरन्तर संलग्न रहने के कारण उसकी सारी आयु व्रत में ही बीती। शिवरात्रि के उपवास से राजा को उत्तम ज्ञान प्राप्त हुआ। वह ज्ञान विज्ञ पुरुषों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। राजा विचित्रवीर्य यह ज्ञान प्राप्त करके भगवान् शिव के अत्यन्त प्रिय भक्त हो गये। शिवरात्रिव्रत से उन्होंने सायुज्य मुक्ति प्राप्त कर ली। उसी पुण्य के प्रभाव से उन्होंने शिवजी की लीला में योग देने के लिये शिवजी से ही दिव्य जन्म प्राप्त किया। दक्षकन्या सती से जब शिवजी का वियोग हुआ तब उनके जटा फटकारने के शब्द से उन्हीं के मस्तक से जो वीरभद्र नामक वीर उत्पन्न हुआ, वह राजा विचित्रवीर्य ही है। वही दक्ष-यज्ञ का विनाश करनेवाला हुआ। (स्क. पु. माहे. केदा. अध्याय 33)*

इसी प्रकार अन्य बहुत से मनुष्य शिवरात्रि-व्रत के प्रभाव से पूर्वकाल में सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। राजा भरत, मान्धाता, धुन्धुमार और हरिश्चन्द्र आदि नरेश भी इस शिवरात्रि व्रत का अनुष्ठान करके ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं(माहेश्वरखण्ड-केदारखण्ड अध्याय 33)।*

माघ(फाल्गुन) मास की शिवरात्रि को महाशिवरात्रि कहा जाता है। माघ(फाल्गुन) मास में कृष्णपक्ष की चतुर्दशी का उपवास अत्यन्त दुर्लभ है। उसमें भी शिवरात्रि में जागरण करना, शिवलिंग का दर्शन करना तथा उनका पूजन करना क्रमशः दुर्लभतर है। करोड़ों जन्मों में उत्पन्न हुई पुण्यराशि के प्रभाव से भगवान् शिव की बिल्वपत्र से पूजा करने का अवसर प्राप्त होता है। दस हजार वर्षोंतक जिसने गंगाजी में स्नान किया है, उसको जो फल मिलता है, वही फल बिल्वपत्र से भगवान् शिव की पूजा से उसको प्राप्त हो जाता है। प्रत्येक युग में जो-जो पुण्य इस संसार में लुप्त हुए हैं, वे सभी फाल्गुन कृष्णा चतुर्दशी(शिवरात्रि) में पूर्णतः विद्यमान रहते हैं। लोक में ब्रह्मादि देवता और वसिष्ठ आदि मुनि इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। इस दिन उपवास का फल सौ यज्ञों से ज्यादा तथा शिवलिंग की बिल्वपत्र से पूजा का अक्षय फल होता है। शिवरात्रि का उपवास, जागरण, भगवान् शिव के समीप वास तथा बिल्वपत्रों से उनकी पूजा मनुष्यों के लिये शिवलोक जाने की सीढ़ी है(ब्राह्मखण्ड-ब्राह्मोत्तरखण्ड अध्याय 2)।*

एक बार ऋषियों ने सूतजी से पूछा कि शिवरात्रि किस समय होती है, उसका विधान एवं माहात्म्य क्या है? सूतजी उत्तर में कहते हैं कि माघ (फाल्गुन) मास के कृष्णपक्ष में जो चतुर्दशी तिथि आती है, उसकी रात्रि ही शिवरात्रि है। उस समय सर्वव्यापी भगवान् शिव सम्पूर्ण शिवलिंगों में विशेषरूप से संक्रमण करते हैं। जो-जो कामना लेकर मनुष्य इस व्रत का अनुष्ठान करता है, उसे अवश्य प्राप्त कर लेता है। जो निष्काम भाव से इसका पालन करता है, वह मोक्ष को प्राप्त होता है। तथा वर्षभर के किये हुए पापों से छुटकारा पा जाता है। इस लोक में जो-जो चल अथवा अचल शिवलिंग हैं, उन सबमें उस रात्रि को भगवान् शिव का संक्रमण होता है इसीलिये उसे शिवरात्रि कहा गया है। यह भगवान् शंकर को बहुत प्रिय है। (संक्षिप्त स्कं. महापु. पृ. 937-938)

सम्पूर्ण देवताओं ने एक समय सब लोकों पर अनुग्रह करने की इच्छा से भगवान् शंकर से प्रार्थना की- "भगवन् समस्त पापों से भरे हुए इस कलिकाल में कोई एक दिन ऐसा बताइये, जो वर्षभर के पापों की शुद्धि कर सके। जिस दिन आपकी पूजा करके मनुष्य सब पापों से शुद्ध हो सकें। जिससे उनका किया हुआ होम, दान आदि हम लोगों को प्राप्त हो सके, क्योंकि कलिकाल में अशुद्ध मनुष्यों द्वारा दी हुई कोई भी वस्तु हमें नहीं मिल पाती।" (संक्षिप्त स्कं. महापु. पृ. 938)

उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि माघ (फाल्गुन) मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को रात के समय मनुष्यों के वर्षभर के पाप को शुद्ध करने के लिये भूतल के समस्त चल एवं अचल शिवलिंगों में संक्रमण करूँगा। जो उस रात में निम्नाकिंत मन्त्रों द्वारा मेरी पूजा करेगा, वह पापरहित हो जायगा। ॐ **सद्योजाताय नमः।** ॐ **वामदेवाय नमः।** ॐ **अघोराय नमः।** ॐ **ईशानाय नमः।** ॐ **तत्पुरुषाय नमः**। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप और नैवेद्य द्वारा इन पाँच मन्त्रों से मेरे पाँच मुखों का पूजन करके निम्नलिखित मन्त्र को पढ़ते हुए मन-ही-मन मेरा ध्यान करे और अर्घ्य प्रदान करे।

अर्घ्य मन्त्रः – गौरीवल्लभ देवेश सर्पाढ्य शशिशेखर।
वर्षपापविशुद्ध्यर्थमर्घ्यो मे गृह्यतां ततः।।

(संक्षिप्त स्क. पु., नागरखण्ड, उत्तरार्ध, अ. 221 पृ. 938)

'पार्वती देवी के प्रियतम, सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी तथा सर्पों की माला से विभूषित भगवान् चन्द्रशेखर! आप वर्षभर के पापों की शुद्धि के लिये मेरा अर्घ्य ग्रहण करें।'

अर्घ्यदान के पश्चात् भोजन, वस्त्र आदि के द्वारा ब्राह्मण का पूजन करें। उसे दक्षिणा दें। मंदिर में बैठकर धार्मिक उपाख्यान, कथा और शिवमहिमा सुनें। जो इस प्रकार शिवरात्रिव्रत करेगा, उसके सब पापों की शुद्धि के लिये यह सर्वोत्तम प्रायश्चित का कार्य करेगा।

भगवान् शंकर के इस उत्तर को सुनकर नारदजी ने भूतल पर पधारकर सब ओर सब लोगों को शिवरात्रिव्रत की महिमा सुनायी। शिवि, नल, नहुष, मान्धाता, धुन्धुमार, सगर, युयुत्सु तथा अन्य महापुरुषों ने भी शिवरात्रिव्रत का पालन कर मनोवांछित पदार्थों को पाया। स्त्रियों में सावित्री,

लक्ष्मीदेवी, सीता, अरुन्धती, सरस्वती, पार्वती, मेना, इन्द्राणी, दृषद्वती, स्वधा, स्वाहा, रति, प्रीति, गायत्री तथा अन्य देवियों ने भी शिवरात्रिव्रत के माध्यम से अभीष्ट मनोरथों को पाया है। गंगाजी के समान कोई तीर्थ नहीं है। महादेवजी के समान दूसरा देवता नहीं है तथा शिवरात्रिव्रत से बढ़कर दूसरा कोई तप नहीं है। यह बिल्कुल सत्य है।

नास्ति गङ्गासमं तीर्थं नास्ति देवो हरोपमः।
शिवरात्रेः परं नास्ति तपः सत्यं मयोदितम्।।

(संक्षिप्त स्क. पु. नाग. उत्त. 221/84-85 पृ. 938)

(5) तीर्थ-प्रकरण

स्कंद पुराण को तीर्थों का पिटारा कहा जाय तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इसमें सैकड़ों शैवतीर्थों की चर्चा विस्तार के साथ मिलती है। भगवान् शिव धर्मराज से कहते हैं कि जिन पुण्यात्मा मनुष्यों का आन्तरिक पाप नष्ट हो गया है, उनके मन में श्रद्धा का उदय होता है।

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
निरस्तमस्ति भो धर्म श्रद्धा मनसि वर्तते।।

(संक्षिप्त स्क. पु. माहेश्वर. केदा. 31/29 पृ. 65)

फिर पूर्वपुण्य के प्रभाव से उनके हृदय में उत्तम तीर्थों में जाने और संत-महात्माओं का दर्शन करने की प्रबल इच्छा जाग्रत होती है। सब तीर्थों का सेवन, यज्ञों का अनुष्ठान और नाना प्रकार के दान आदि कार्य अन्तःकरण की शुद्धि के लिये ही करने योग्य हैं।

इस पुराण में अनेक मुक्तिदायक तीर्थों का वर्णन कर मानसतीर्थ एवं काशीतीर्थ की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। अगस्त्यजी लोपामुद्रा से कहते हैं कि मुक्ति के अनेक स्थान हैं जैसे प्रयाग, श्रीशैल, नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, गंगाद्वार(हरिद्वार), अवन्ती, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, अमरावती, सरस्वती और समुद्र का संगम, गंगासागरसंगम, काँचीपुरी, त्र्यम्बकतीर्थ, सप्तगोदावरीतट, कालंजरतीर्थ, प्रभासक्षेत्र, बदरिकाश्रम, महालय, ॐकारक्षेत्र(अमरकण्टक), पुरुषोत्तमक्षेत्र(जगन्नाथपुरी), गोकर्णतीर्थ, भृगुकच्छ, भृगुतुंग, पुष्कर, रामेश्वर, धारातीर्थ और काशी आदि। सत्य, दया आदि जो मानसिक-तीर्थ हैं, वे भी मोक्ष देनेवाले हैं। गयाक्षेत्र भी पितरों के लिये मोक्षदायक बताया गया है। वहाँ श्राद्ध करने से मनुष्य अपने पितरों व पितामहों के ऋण से मुक्त होते हैं।

लोपामुद्रा के पूछने पर अगस्त्यजी मानस-तीर्थों का विस्तार से वर्णन कर उसकी श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते है। "सत्य, क्षमा, इन्द्रियों को वश में रखना, सब प्राणियों पर दया करना, सरलता, दान, दम(मन का संयम) तथा संतोष-ये सब मानस-तीर्थ हैं। ब्रह्मचर्य का पालन, प्रिय वचन बोलना, ज्ञान, धैर्य और तपस्या को भी मानस-तीर्थ कहा गया है। तीर्थों में भी सबसे बड़ा तीर्थ है अन्तःकरण की आत्यन्तिक शुद्धि। जल में डुबकी मारने का नाम ही स्नान नहीं है, जिसने इन्द्रिय-संयमरूप स्नान

किया है, वही स्नान है और जिसका चित्त शुद्ध हो गया है, वही पवित्र है।"

"जो लोभी है, चुगलखोर है, निर्दय है, दम्भी है और विषयों में फँसा है, वह सारे तीर्थों में भली-भाँति स्नान कर लेनेपर भी पापी और मलिन ही है। शरीर का मैल उतारने से ही मनुष्य निर्मल नहीं होता; मन के मल को निकाल देनेपर ही भीतर से सुनिर्मल होता है। जल-जन्तु जल में ही पैदा होते हैं और जल में ही मरते हैं, परन्तु वे स्वर्ग में नहीं जाते; क्योंकि उनके मन का मैल नहीं धुलता। विषयों में अत्यन्त राग ही मन का मैल है और विषयों से वैराग्य को ही निर्मलता कहते हैं। चित्त अन्तर की वस्तु है, उसके दूषित रहनेपर केवल तीर्थ-स्नान से शुद्धि नहीं होती। शराब के घड़े को ऊपर से चाहे सौ बार जल से धोया जाय, वह अपवित्र ही रहता है; वैसे ही जबतक मन का भाव शुद्ध नहीं है, तबतक उसके लिये दान, यज्ञ, तप, शौच, तीर्थसेवन और स्वाध्याय-सभी अतीर्थ हैं। जिसकी इन्द्रियाँ संयम में हैं, वह मनुष्य जहाँ रहता है, वहीं उसके लिये कुरुक्षेत्र, नैमिषारण्य और पुष्करादि तीर्थ विद्यमान हैं। ध्यान से विशुद्ध हुए, राग-द्वेषरूपी मल का नाश करनेवाले ज्ञान-जल में जो स्नान करता है, वही परमगति को प्राप्त करता है।"

शृणु तीर्थानि गदतो मानसानि ममानघे।
येषु सम्यङ्नरः स्नात्वा प्रयाति परमां गतिम्।।
सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदया तीर्थं तीर्थमार्जवमेव च।।
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परं तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ।।
ज्ञानं तीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थविशुद्धिर्मनसः परा।।
.....
.....
निगृहीतेन्द्रियग्रामो यत्रैव च वसेन्नरः।
तत्र तस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च।।
ध्यानपूते ज्ञानजले राग द्वेषमलापहे।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम्।। (स्क. पु. काशीखण्ड पूर्वार्ध 6/29-41)*

पृथ्वीपर स्थित जो तीर्थ हैं उनकी पवित्रता के हेतु को समझाते हुए अगस्त्यजी लोपामुद्रा से कहते हैं कि जैसे शरीर के कुछ अंग पवित्र माने गये हैं, उसी प्रकार पृथ्वी के कुछ भाग अत्यन्त पुण्यमय हैं। पृथ्वी के अद्भुत प्रभाव, जल के विलक्षण तेज तथा मुनियों के निवासस्थान होने से तीर्थ पुण्य-स्वरूप माने जाते हैं। अतः जो प्रतिदिन भूमण्डल के तीर्थों और मानस तीर्थों में भी स्नान करता

है, वह परमगति को प्राप्त होता है। जिसके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप और कीर्ति सभी संयम में हैं, वह तीर्थ के पूर्ण फल का भागी होता है। जो प्रतिग्रह नहीं लेता और जिस किसी भी वस्तु से सन्तुष्ट रहता है तथा जिसमें अंहकार का सर्वथा अभाव है, वह तीर्थफल का भागी होता है। जो दम्भी नहीं है, नये-नये कार्यों का प्रारंभ नहीं करता, थोड़ा खाता है, इन्द्रियों को काबू में रखता है और सब प्रकार की आसक्तियों से दूर रहता है, वह तीर्थफल का भागी होता है। जो क्रोधी नहीं है, जिसकी बुद्धि निर्मल है, जो सत्य बोलनेवाला और दृढ़तापूर्वक व्रत का पालन करनेवाला है, जो सब प्राणियों के प्रति अपने ही समान बर्ताव करता है, वह तीर्थफल का भागी होता है।

प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्।
अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते।।
अदम्भको निरारम्भो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्वसङ्गैर्यः स तीर्थफलमश्नुते।।
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादी दृढ़व्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते।। (काशीख. पूर्वा. 6/49-51)*

भगवान् शंकर स्कंदजी से कहते हैं कि "जो चंचल बुद्धि हैं, लोभी हैं और तथ्य की बात नहीं कहते हैं, जिनके मन में परिहास, परधन और परस्त्री की इच्छा है तथा जिनका कपटपूर्ण आग्रह है, जो दूषित वस्त्र पहनते हैं, जो अशान्त, अपवित्र और सत्कर्मों के त्यागी हैं, उन मलिन-चित्त मनुष्यों को तीर्थ में कोई फल नहीं मिलता।"

ये तत्र चपलास्तथ्यं न वदन्ति च लोलुपाः।
परिहासपरद्रव्यपरस्त्रीकपटाग्रहाः।।
मलचैलावृताशान्ताशुचयस्त्यक्तसत्क्रियाः।
तेषां मलिनचित्तानां फलमत्र न जायते।। (स्कं. पु. वैष्ण. बदरि. 6/69-70)*

पुनः कहा गया है कि "श्रद्धाहीन, पापात्मा(तीर्थ में पापी की-पाप करनेवाले की शुद्धि होती है पर जिसका स्वभाव ही पापमय है, उस 'पापात्मा' की नहीं होती), नास्तिक, सन्देहशील और हेतुवादी(केवल तर्क का सहारा लेनेवाला)-इन पाँचों को तीर्थफल की प्राप्ति नहीं होती।"

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिकोऽछिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः।। (स्क. पु. काशीख. पूर्वा. 6/54)*

उग्रश्रवा मुनि कहते हैं कि " जिसके हाथ, पैर और मन भलीभाँति संयम में हों तथा जिसकी सभी क्रियाएँ निर्विकार भाव से सम्पन्न होती हों, वही तीर्थ का पूरा फल प्राप्त करता है।"

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स तीर्थफलमश्नुते।। (स्क. माहे. कुमा. 2/6)*

तीर्थों में किस प्रकार रहना चाहिये, इसे बताते हुए कहा गया है कि" (इस क्षेत्र में वास करनेवाले) ममतारहित, अंहकाररहित, आसक्तिरहित, परिग्रह से शून्य, बन्धु-बान्धवों में स्नेह न रखनेवाले, मिट्टी, पत्थर और सोने में समान बुद्धि रखनेवाले, मन, वाणी और शरीर के द्वारा किये जानेवाले त्रिविध कर्मों से सदा सब प्राणियों को अभय देनेवाले, सांख्य और योग की विधि को जाननेवाले, धर्म के स्वरूप को समझनेवाले और संशय-सन्देह से रहित हों।"

निर्ममा निरहङ्कारा निःसङ्गा निष्परिग्रहाः।
बन्धुवर्गेण निःस्नेहाः समलोष्ठाश्मकाञ्चनाः।।
भूतानां कर्मभिर्नित्यं त्रिविधैरभयप्रदाः।
सांख्ययोगविधिज्ञाश्च धर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः।।

(स्क. पु. अवन्तिख. आव. मा. 7/32-33)*

जो तीर्थ का सेवन करनेवाला, धीर, श्रद्धालु और एकाग्रचित्त है, वह पहले का पापाचारी हो, तो भी शुद्ध हो जाता है। फिर जो पुण्यकर्म करनेवाला है, उसके लिये तो कहना ही क्या है। तीर्थसेवी मनुष्य कभी पशुयोनि में जन्म नहीं लेता। कुदेश में भी उसका जन्म नहीं होता और वह कभी दुःख का भागी नहीं होता। वह स्वर्ग भोगता है और मोक्ष का उपाय भी प्राप्त कर लेता है। (स्क. पु. काशी. पू. अ. 6/52-53)*

तीर्थयात्रा की इच्छा करनेवाला मनुष्य पहले अपने घर में उपवास करके श्रीगणेशजी का यथाशक्ति पूजन करे। तत्पश्चात् पितरों, ब्राह्मणों और साधुपुरुषों की भी शक्ति के अनुसार पूजा करके व्रत का पारण करे। फिर प्रसन्नतापूर्वक संयम-नियम का पालन करते हुए तीर्थ में जाय। वहाँ पहुँचकर पितरों का भलीभाँति पूजन करे। ऐसा करनेवाला तीर्थ के यथार्थ फल का भागी होता है। तीर्थ में ब्राह्मण के पूर्ण गोत्र और विद्या की परीक्षा नहीं करनी चाहिये। यदि वह अन्न की इच्छा रखनेवाला हो, तब उसे भोजन अवश्य कराना चाहिये। तीर्थों में सत्तू, चरु, खीर, पिण्याक(तिल के चूर्ण) और गुड़ से पिण्डदान करना चाहिये। तीर्थ में अर्घ्य और आवाहन के बिना श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध के योग्य समय हो अथवा न हो, तीर्थ में पहुँचने पर श्राद्ध और तर्पण अविलम्ब करना चाहिये। अन्य कार्य के प्रसंग से तीर्थ में जानेपर भी वहाँ अवश्य स्नान करे। ऐसा करने से वह स्नानजनित फल को पाता है, तीर्थयात्रासंबंधी फल को नहीं। (वही 6/56-61)

श्रद्धालु मनुष्यों को तीर्थ यथार्थ फल देनेवाला होता है। जो दूसरे के लिये तीर्थयात्रा करता है, वह तीर्थजनित पुण्य के सोलहवें अंश को पाता है। कुश का एक पुतला बनाकर उसे तीर्थ के जल में नहलावे। जिस पुरुष के उद्देश्य से उस पुतले को नहलाया जाता है, वह तीर्थ-स्नानजनित पुण्य के आठवें अंश को प्राप्त कर लेता है। तीर्थ में जाकर उपवास तथा सिर का मुण्डन कराना चाहिये, क्योंकि मुण्डन कराने से सिर पर चढ़े हुए पाप दूर हो जाते हैं। जिस दिन तीर्थ में पहुँचना हो उसके

पहले दिन उपवास करना चाहिये और तीर्थ में पहुँचने के दिन पितरों के लिये श्राद्ध एवं दान करना चाहिये। कांची, काशी, माया(कनखल से लक्ष्मणझूलातक), अयोध्या, मथुरा, द्वारका और अवन्ती–ये सात पुरियाँ मोक्ष देनेवाली हैं। (स्क. पु. का. पू. 6/62–68)*

काशी काञ्ची च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि।
मथुरावन्तिका चैताः सप्त पुर्योऽत्र मोक्षदाः।। (स्क. पु. काशी. पूर्व. 6/68)*

श्रीशैल नामक पर्वत का सम्पूर्ण प्रदेश मोक्ष देनेवाला है। केदारतीर्थ का महत्त्व उससे भी अधिक है। श्रीशैल और केदार से भी उत्तम मोक्षदायक तीर्थ प्रयाग है तथा प्रयाग से भी बढ़कर अविमुक्तक्षेत्र है। अविमुक्तक्षेत्र(काशी) में जैसा मोक्ष प्राप्त होता है, वैसा कहीं नहीं। इस प्रकार सभी पार्थिव तीर्थों में काशी को ज्यादा महत्त्व दिया गया है। (वही 6/69–70)*

तीर्थयात्रा के उद्देश्य के संदर्भ में कहा गया है कि तीर्थयात्रा के प्रसंग से महापुरुषों के दर्शन के लिये जाना ही यात्रा का प्रधान उद्देश्य है। जिस भूभाग में संत–महात्मा निवास करते हैं वही 'तीर्थ' कहलाता है। (स्क. पु. माहे. कुमा. 13/10)*

मुख्या पुरुषयात्रा हि तीर्थयात्रानुषङ्गतः।
सद्भिः समाश्रितो भूमिभागस्तीर्थतयोच्यते।। (स्क. माहे. कुमा. 13/10)*

(6) भगवान् शिव के विभिन्न तीर्थ

भूमिपर मनुष्यों को लौकिक सुख, स्वर्गभोग तथा कैवल्य तीनों की प्राप्ति हो सकती है; इनमें से प्रथम दो वस्तुएँ(लौकिक सुख और स्वर्गभोग) पुण्य क्षीण होनेपर प्रायः नष्ट हो जाती हैं, परन्तु तृतीय वस्तु(मोक्ष) का नाश नहीं होता। उसकी सिद्धि बुद्धि एवं विज्ञान के द्वारा बतलायी गयी है। किन्तु समस्त देहधारियों को विशुद्ध ज्ञान दुर्लभ है; वही ज्ञान किसी–किसी क्षेत्र में शास्त्र आदि पढ़े बिना ही केवल शिव के पूजनमात्र से सिद्ध हो जाता है। अतः जिस स्थान के माहात्म्य से समस्त शरीरधारियों को नियमपूर्वक शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति हो जाय, उसका वर्णन स्कन्द पुराण में इस प्रकार है। (शिवप्रधान तीर्थों के सेवन से उस ज्ञान की प्राप्ति होती है, जिससे मनुष्य संसार–बन्धन से छुटकारा पा जाता है; अतः शैवतीर्थों का वर्णन किया जाता है।)

'वाराणसीक्षेत्र' पाँच कोसतक परम पावन बताया गया है, जहाँ 'अविमुक्त' नामक महादेवजी 'विशालाक्षी' देवी के द्वारा पूजित होते हैं। वहीं 'कपालमोचन' तीर्थ है और वहीं काल भैरव का भी निवास है। उस काशीपुरी में मरे हुए मनुष्यों को शिवस्वरूप की प्राप्ति होती है। गया और प्रयाग भी सब सिद्धियों को देनेवाले तीर्थ कहे गये हैं; वहाँ पिण्डदान करने से पितर बहुत सन्तुष्ट होते हैं। केदारतीर्थ में भगवान् शंकर इस समय भी महिषरूप धारण करके रहते है और मनुष्यों का सर्वथा कल्याण करते हैं। 'बदरिकाश्रम' तीर्थ मनुष्यों को सब प्रकार की सिद्धि प्रदान करनेवाला है। वहाँ देवी पार्वती के साथ महादेवजी नर–नारायण द्वारा पूजित होकर रहते हैं। 'नैमिषारण्य' क्षेत्र में त्रिपुरासुर का

विनाश करनेवाले देवाधिदेव महादेवजी निवास करते हैं। 'अमरेश' तीर्थ भी सब पुरुषार्थों का साधक बताया गया है, वहाँ 'ओंकार' नामवाले महादेवजी और 'चण्डिका' नाम से प्रसिद्ध पार्वतीजी निवास करती हैं। 'पुष्कर' नामक महातीर्थ में 'रुजोगन्धि' शिव और 'पुरुहूता' देवी निवास करती हैं। 'आषाढ़ी' नाम का पवित्र तीर्थस्थान है, वहाँ 'आषाढ़ेश' महादेव तथा 'रति' नामवाली देवी निवास करती हैं। 'दण्डिमुण्डी' नाम से प्रसिद्ध जो तीर्थस्थान है, वहाँ 'मुण्डी' महादेव और 'दण्डिका' देवी का निवास हैं। 'लाकुलि' नामक विशुद्ध तीर्थ है, जहाँ 'लाकुलीश' महादेव और 'सर्वमङ्गला' देवी निवास करती हैं। 'भारभूति' नामक स्थान में 'भार' नामक शिव और 'भूति' नामवाली पार्वती रहती हैं। 'अरालकेश्वर' नामक स्थान है, जहाँ 'सूक्ष्म' नामवाले शिव तथा 'सूक्ष्मा' नामवाली गिरिराजकुमारी निवास करती हैं। 'कुरुक्षेत्र' नामक स्थान है, जहाँ 'स्थाणु' नामवाले महादेव और 'स्थाणुप्रिया' नामवाली महादेवी का निवास हैं। 'कनखल' नामक उत्तम तीर्थस्थान है, जहाँ भगवान् शिव 'उग्र' नाम से और गिरिराजनन्दिनी 'उमा' नामसे निवास करती हैं। 'तालक' नामवाले तीर्थ में 'स्वयम्भू' महादेव और 'स्वायम्भुवी' महादेवी रहती हैं। 'अट्टहास' नामक महातीर्थ है, जहाँ सूर्यदेव ने भगवान् शंकर की पूजा करके अपना मनोरथ पूर्ण किया था। 'कृत्तिवास' – क्षेत्र का निवास महादेवजी के लिये कैलास की अपेक्षा भी अधिक प्रिय है। 'श्रीशैल' पर भगवान् महेश्वर 'भ्रमराम्बिका' देवी के साथ 'मल्लिकार्जुन' नाम से निवास करते हैं। ब्रह्माजी ने सृष्टिकार्य की सिद्धि के लिये इनका पूजन किया था।(संक्षिप्त स्क. पु. माहे. अरु. मा. पृ. 192 – 193)

'सुवर्णमुखरी' नदी के तटपर भगवान् शंकर 'कालहस्ती' नाम से प्रसिद्ध हैं; उनके साथ 'भृङ्गमुखरालका' नामवाली अम्बिका देवी रहती हैं। भगवान् व्यास ने वहाँ अम्बासहित भगवान् शिव की आराधना की थी। 'काञ्चीपुरी' में एक आम के वृक्ष के नीचे 'कामाक्षी' देवी के साथ भगवान् शिव 'कामशासन' नाम से निवास करते हैं। 'व्याघ्रपुर' नाम से प्रसिद्ध एक तीर्थ है, जहाँ तिल्लीवन के भीतर नृत्य करते हुए भगवान् 'नटराज' की महर्षि पतञ्जलि उपासना करते हैं। 'सेतुबन्ध' नामक तीर्थ है, जहाँ भगवान् रामचन्द्रजी ने समस्त पापों का नाश करनेवाले महादेवजी की 'रामेश्वर' नाम से स्थापना की है। 'गजप्रपा' नामक एक तीर्थस्थान है, जहाँ भगवान् 'वृषभध्वज' सम्पूर्ण जगत् की रक्षा करने के लिये अश्वत्थ वृक्ष के नीचे विराजमान हैं। 'वृद्धाचल' – क्षेत्र में 'मणिमुक्ता' नदी के तटपर महादेवजी सदा निवास करते हैं। 'मध्यार्चन' नामक उत्तम स्थान पर मनोवाञ्छित वर देनेवाले भगवान् शंकर गौरीदेवी के साथ नित्य निवास करते हैं। भगवान् 'सोमनाथ' जहाँ निवास करते हैं, उस 'सोमतीर्थ' का नाम प्रसिद्ध है। वहाँ शरीर त्याग करनेवाले पुरुषों को पुनः संसार – बन्धन की प्राप्ति नहीं होती। 'सिद्धवट' – क्षेत्र में सिद्धपुरुष उत्तम 'ज्योतिर्लिंग' की पूजा करते हैं। 'कमलालय' – क्षेत्र में 'बाल्मीकेश्वर' की पूजा करने से लक्ष्मीदेवी ने अद्‌भुत ज्ञान प्राप्त किया था।(संक्षिप्त स्क. पु. माहे.

अरु. मा. पृ. 193)

'द्रोणपुर' नामक तीर्थ में कलियुग की समाप्ति पर समुद्र के क्षुब्ध होनेपर भगवान् पार्वतीपति नौका पर आरूढ़ होते हैं। 'ब्रह्मपुर' – क्षेत्र में ब्रह्माजी ने पुष्करिणी के तटपर महादेवजी की स्थापना की थी। 'कोटिक' नामक क्षेत्र में भगवान् चन्द्रशेखर भलीभाँति ध्यान करनेवाले पुरुषों के करोड़ों पाप का संहार करते हैं। 'गोकर्ण' – क्षेत्र के समीप भगवान् शिव की आराधना की अभिलाषा रखनेवाले परशुरामजी स्वर्गलोक का सुख भी नहीं चाहते। 'त्रिपुरान्तक' – क्षेत्र में तीननेत्रोंवाले भगवान् शिव अपना दर्शन करनेवाले पुरुषों के नरकभय का निवारण करते हैं। 'कांलजर' – क्षेत्र है, जहाँ निवास करनेवाले भगवान् 'नीलकण्ठ' भक्तों के भंयकर संसाररोग का निवारण करते हैं। 'प्रियाल' वन प्रसिद्ध क्षेत्र है, जहाँ भगवान् अम्बिकापति ने दूध की इच्छा रखनेवाले उपमन्यु को दूध का समुद्र ही दे डाला था। 'प्रभास' – क्षेत्र में भगवान् 'चन्द्रार्धशेखर' ने श्रीकृष्ण और बलभद्र से पूजित होकर अक्षय फल प्रदान किया है। 'वेदारण्य' तीर्थ में प्रजापति दक्ष ने मोक्ष के लिये भगवान् शंकर की प्रार्थना की थी। 'हेमकूट' भगवान् 'त्रिलोचन' का स्थान है, जहाँ तपस्या करनेवाले पुरुषों का पुनर्जन्म नहीं होता। 'वेणुवन' नामक क्षेत्र सब पापों का नाश करनेवाला है, जहाँ वंशलता के गर्भ से मुक्तामणिमय भगवान् शिव प्रकट हुए। भगवान् शिव का 'जालन्धर' नामक स्थान में तपस्या करके जलन्धर ने शिवगणों का आधिपत्य प्राप्त किया है। 'ज्वालामुख' नामक स्थान में ज्वालामुखी देवी ने भगवान् 'कालरुद्र' का पूजन किया है। 'भद्रपट' नाम से प्रसिद्ध एक क्षेत्र में भक्तों ने सम्पत्ति के लिये भगवान् त्रिलोचन का पूजन किया है। 'गन्धमादन' – क्षेत्र में भगवान् मृत्युंजय की पूजा करके मनुष्य निश्चय ही सुख प्राप्त करता है। शिवजी के 'गोपर्वत' नामक स्थान में उपासना करके पाणिनि वैयाकरणों में अग्रगण्य हो गये। 'वीरकोष्ठ' नामक क्षेत्र में तपस्या करके महर्षि बाल्मीकि ने कवियों में प्रधानता प्राप्त कर ली। महातीर्थ में भगवान् शंकर ने ब्रह्मा आदि देवताओं को पढ़ाया है। 'मयूरपुर'(मायावरम्) नामक माहेश्वर – तीर्थ है, जहाँ तपस्या करके इन्द्र ने वज्र प्राप्त किया। वेगवती नदी के तटपर 'श्रीसुन्दर' नामक क्षेत्र है, जहाँ कलियुग में भी देवाधिदेव महादेवजी शोभा पाते हैं। भगवान् शंकर के 'कुम्भकोण' नामक स्थानपर माघ मास में साक्षात् गंगा भी अपने पाप की शान्ति के लिये निवास करती हैं। गोदावरी नदी के तटपर 'त्र्यम्बक' नामक स्थान है, जहाँ कार्तिकेयजी ने तारकासुर को मारनेवाली शक्ति प्राप्त की है। श्रीपाटल में 'व्याघ्रपुर' नामक स्थान है, जहाँ त्रिशङ्कु मुनि ने जाति – शुद्धि के लिये 'गंगाधर' शिव का पूजन किया था। 'कदम्बपुरी' नामक क्षेत्र में महादेवजी ने मार्कण्डेयजी के लिये त्रिशूल से कालपर आघात किया था। 'अविनाश' – क्षेत्र में भगवान् शिव पार्वतीदेवी के साथ सदा निवास करते हैं। 'रक्तकानन' नाम से प्रसिद्ध जो क्षेत्र है, उसमें भगवान् शिव ने मित्र और वरुण देवता को वरदान दिया था। पाताल में 'हाटकेश्वर' – क्षेत्र है, जहाँ विरोचनकुमार बलि अपने अभिलषित पद की प्राप्ति

के लिये महादेवजी की पूजा करते हैं। भगवान् के प्रिय निवास 'कैलास' में यक्षराज कुबेर भक्तिभाव से भगवान् त्रिलोचन की पूजा करते हैं। (संक्षिप्त स्क. पु. पृ. 193-194)

इस पुराण में उपरोक्त तीर्थों में से अनेक का विस्तार से वर्णन किया गया है। भगवान् शिव के प्रमुख अड़सठ(68) क्षेत्रों के नाम तथा उनके कीर्तन का महत्त्व भी बताया गया है। इन क्षेत्रों के नाम इसी पुस्तक में अन्यत्र दिये गये हैं। इस क्षेत्र में अरुणाचलक्षेत्र, रामेश्वरक्षेत्र, धर्मारण्यक्षेत्र, गोकर्णक्षेत्र, काशीक्षेत्र, अवन्तीक्षेत्र, रेवाक्षेत्र, नागरक्षेत्र, प्रभासक्षेत्र तथा महीसागर संगमक्षेत्र में स्थित अनेक शैव तीर्थों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। इसमें सेतुबन्ध रामेश्वरक्षेत्र की यात्रा के महत्त्व के साथ-साथ उसका क्रम भी बताया गया है। इसी प्रकार काशीखण्ड में काशी की उत्पत्ति-कथा, उसका माहात्म्य तथा उसकी श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। काशी में स्थापित अनेक शिवलिंगों की कथा तथा महात्म्य का वर्णन भी किया गया है।

काशी के प्रमुख 28 लिगों के नाम इस प्रकार हैं- ॐकारलिंग, त्रिलोचन, महादेव, कृतिवासा, रत्नेश्वर, चन्द्रेश्वर, केदारेश्वर, धर्मेश्वर, वीरेश्वर, कामेश्वर, विश्वकर्मेश्वर, मणिकर्णीश्वर, अविमुक्तेश्वर और विश्वेश्वर महालिंग। इन चौदह लिंगों के समुदाय को मुक्तिक्षेत्र कहा गया है। प्रत्येक मास की प्रतिपदा से लेकर चतुर्दशीतक इन प्रधान-प्रधान लिंगों की यात्रा करनी चाहिये। शैलेश्वर, संगमेश्वर, स्वर्लीनेश्वर, मध्यमेश्वर, हिरण्यगर्भेश्वर, ईशानेश्वर, गोम्रेक्षेश्वर, वृषभध्वजेश्वर, उपशान्तेश्वर, ज्येष्ठेश्वर, निवासेश्वर, शुक्रेश्वर, व्याघ्रेश्वर और जम्बुकेश्वर-इन चौदह लिंगों की पूजा वैशाख कृष्ण प्रतिपदा से लेकर चतुर्दशीतक करनी चाहिये। उपरोक्त लिंगों में से अनेक का विस्तार हम इस पुराण में पाते हैं। इस पुराण में काशीयात्रा के कर्म का भी वर्णन किया गया है। (संक्षिप्त स्क. पु. पृ. 671)

आवन्त्यक्षेत्र के माहात्म्य के साथ-साथ महाकाल की परिक्रमा तथा उसकी यात्रा, आवन्त्य-क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण तीर्थों एवं शिवलिंगों की चर्चा विस्तार से की गयी है। नर्मदा एवं वरांगना के संगम-क्षेत्र में भगवान् शिव के अठ्ठाईस स्वयंभूलिंग हैं। इन लिंगों के नाम भी उस पुराण में दिये गये हैं। नर्मदा के उत्तरी तटपर त्रिपुरी नामक तीर्थ है, उस तीर्थ में 108 स्वयंभूलिंग विद्यमान हैं। यहाँपर महादेवजी ने त्रिपुर को मार गिराया था।(संक्षिप्त स्क. पु. पृ. 754)

नागर-क्षेत्र में स्थित हाटेश्वर-क्षेत्र तथा उसके अन्दर स्थित अनेक लिंगों की कथाओं को विस्तार से दिया गया है। कहा गया है कि गर्मी और वर्षा ऋतु में भगवान् शिव हिमालय के केदार-क्षेत्र में रहते हैं, किंतु शीतकाल में हाटकेश्वर-क्षेत्र में चले आते हैं। (संक्षिप्त स्क. पु. पृ. 884)

प्रभासखण्ड के अन्तर्गत प्रभास-तीर्थ की सीमा, क्षेत्रविभाग एवं महिमा आदि का वर्णन किया गया है। सोमनाथ की महिमा, यात्राविधि तथा पूजा आदि का भी वर्णन किया गया है। प्रभास-क्षेत्र में स्थित लिंगों-संबंधी कथाओं का भी विस्तार से वर्णन किया गया है।

स्कन्द पुराण में काशीक्षेत्र की काफी विस्तार से चर्चा की गयी है। अतः हम भी यहाँ उसकी थोड़ी विशेष चर्चा करेंगे। काशी की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि निर्गुण शिव ने शक्ति के प्राकट्य के साथ ही काशीक्षेत्र की सृष्टि की(स्क. पु. का. ख. पू. 26/24)।* अर्थात् यह क्षेत्र सृष्टि के प्रारंभ से ही है। प्रलयकाल में भी शिव-पार्वती इस क्षेत्र का कभी त्याग नहीं करते हैं इसलिये इसे 'अविमुक्तक्षेत्र' कहते हैं(वही 26/27)।* यह क्षेत्र शिव के आनंद का हेतु है इसलिये इसका नाम आनंदवन भी है(वहीं 26/34)।* काशीक्षेत्र महादेवजी के त्रिशूल की नोकपर स्थित है। यह न तो आकाश में स्थित है और न भूमि पर ही। किंतु मूढ़ मनुष्य इसे इस रूप में नहीं देख पाते(स्क. पु. का. ख. पू. 22/85)।* प्रलयकाल में काशीपुरी को अपने त्रिशूल के अग्रभागपर रखकर भगवान् शिव इसकी रक्षा करते हैं अतः काशी कलि एवं काल से वर्जित है(स्क. पु. काशी. पू. 30/110)।* प्रलय-काल में एकार्णव का जल जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे इस क्षेत्र को शिवजी ऊपर उठाते जाते हैं। (स्क. पु. का. ख. पू. 22/84)*

पाँच कोस लंबे एवं पाँच कोस चौड़े इस काशीक्षेत्र में केवल भगवान् शिव की आज्ञा चलती है, यमराज आदि दूसरों की नहीं। शिवजी ने स्वयं कहा है "इस क्षेत्र में निवास करनेवाले पापी जीवों का भी मैं ही शासक हूँ, दूसरा नहीं(स्क. पु. का. पू. 26/101, 103)।"* जैसे आकाश के एक देश में स्थित होनेपर भी सर्वगत सूर्यमण्डल सबको दिखायी देता है, उसी प्रकार विश्वनाथ केवल काशी में स्थित होकर भी सर्वव्यापी होने के कारण सर्वत्र उपलब्ध होते हैं।

काशी में निवास करनेवाला तथा वहीं मृत्यु को प्राप्त हुआ पुरुष मुक्त हो जाता है। वेदान्त द्वारा जानने योग्य परब्रह्म परमात्मा के निदिध्यासन, सांख्य और योग के बिना ही काशी में मरा हुआ मुक्त हो जाता है। काल से काशी में शरीर छोड़नेवाला भगवान् शिव द्वारा तारकमन्त्र का उपदेश पाकर अमर हो जाता है। भगवान् शिव की आज्ञा के बिना काशीवास संभव नहीं है(स्क. पु. का. पू. 30/10-14)।* काशीपुरी की महिमा में कहा गया है कि 'काशी' यह दो अक्षरों का नाम प्रतिदिन प्रातःकाल जपनेवाले को इहलोक एवं परलोक दोनों में विजय प्राप्त हो लोकातीत पद की प्राप्ति होती है(स्क. पु. का. उ. 85/61-62)।*

शरीर की शुद्धि जल से होती है, मन की शुद्धि सत्य से, जीवात्मा की शुद्धि विद्या और तप से और बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है। आम व्यक्तियों को ज्ञान होना असंभव सा है। अतः कहा गया है कि ज्ञान मनुष्यों को काशीसेवन से प्राप्त होता है। काशीसेवन से भगवान् शिव की करुणा का उदय

होता है जो कर्मबन्धन का उन्मूलन करने में समर्थ होती है।[1] भगवान् शिव ने ब्रह्मा एवं विष्णु को विश्वेश्वर लिंग की महिमा बताते हुए कहा है कि यह लिंग परम ज्योति है, यही परात्पर ब्रह्म है और यही अत्यन्त सिद्धिदायक मेरा स्थावर रूप है। जो मुझ विश्वनाथ के लिंगमय विग्रह का दर्शन करके मन ही मन प्रसन्न होता है वह मेरे गणों में शामिल हो जाता है। (स्क. पु. का. पू. उ. 98/6-8)*

मुक्ति की इच्छावाले को काशीवास, शिवलिंग का यत्नपूर्वक पूजन, दम(इन्द्रियसंयम), दान और दया-ये सदा करना चाहिये। यहाँ मन से भी कभी पाप नहीं करना चाहिये, क्योंकि यहाँ का किया हुआ पाप और पुण्य अक्षय होता है। अन्यत्र किया हुआ पाप काशी में नष्ट होता है, काशी में किया हुआ पाप अन्तर्गृह में नष्ट होता है परन्तु अन्तर्गृह में किया हुआ पाप पैशाच्यनरक की प्राप्ति करानेवाला है। अन्तर्गृह में पाप करनेवाला पुरुष यदि काशी से बाहर चला जाता है, तो उसे पिशाचनरक की प्राप्ति होती है, क्योंकि काशी में किया पापकर्म करोड़ों कल्पों में भी शुद्ध नहीं होता। परन्तु यदि यहीं उसकी मृत्यु हो, तो उसे 30 हजार वर्षोंतक रुद्रपिशाच होकर रहना पड़ता है। उसके बाद फिर यहीं रहते हुए उसे उत्तम ज्ञान की प्राप्ति होगी और उसी ज्ञान से उसे मोक्ष प्राप्त हो जायगा(स्क. पु. का. ख. उ. 64/65-72)।*

ब्रह्माजी काशीपुरी की महिमा बताते हुए कहते हैं कि "यहाँ सदा सत्ययुग रहता है, सदा महापर्व लगा रहता है। यहाँ ग्रहों के अस्त-उदयजनित दोष की प्राप्ति नहीं होती। यहाँ सदा उत्तरायण है। काशी में देहत्याग करनेवालों का नियन्त्रण स्वयं भगवान् विश्वनाथ करते हैं। जिन्होंने वहाँ रहकर भी पाप किये हैं, उनको दण्ड देनेवाले कालभैरव हैं। वहाँ कभी किसी को पाप नहीं करना चाहिये, क्योंकि वहाँ पाप करनेवालों को दारुण रुद्रयातना भोगनी पड़ती है, जो नरक से भी अधिक दु:सह है"(काशीखण्ड पूर्वार्द्ध अध्याय 22/86-87, 93-94)।*

जो मनुष्य दुसरों की निन्दा और परस्त्री की अभिलाषा करते हैं, उन्हें काशी का सेवन नहीं करना चाहिये, क्योंकि कहाँ काशी और कहाँ वह नरक। जो वहाँ सदा प्रतिग्रह लेकर धनसंग्रह करने की अभिलाषा रखते हैं अथवा कपटपूर्वक दूसरों का धन हड़प लेना चाहते हैं, ऐसे लोगों को भी काशी का सेवन नहीं करना चाहिये। काशी में रहनेवाले पुरुषों को दूसरों को पीड़ा देनेवाले कर्म सदा के लिये त्याग देने चाहिये। यदि वहाँ भी वही करना हो, तो दुष्टचित्तवाले पुरुषों का काशी में वास किस काम

1. **अद्भिर्गात्राणिशुध्यंतिमनः सत्येनशुद्ध्यति।**
विद्यातपोभ्यांभूतात्माबुद्धिर्ज्ञानेनशुद्ध्यति।।
तच्चज्ञानंभवेत्पुंसांसम्यक्काशीनिषेवणात्।
काशीनिषेवणेनस्याद्विश्वेशकरुणोदयः।।
ततोमहोदयावाप्तिः कर्मनिर्मूलनक्षमा।
अतः काश्यांप्रयत्नेनस्नानंदानंतपोजपः।। (स्क. पु. का. ख. उ. 96/72-74)*

का है। जो दूसरों से द्रोह की बात सोचते, दूसरों से डाह रखते और सदा दूसरों को सताया करते हैं, उनके लिये काशीपुरी सिद्धिदायक नहीं। जो अर्थार्थी या कामार्थी हैं, उनको इस मुक्तिदायक काशीक्षेत्र में नहीं रहना चाहिये। जो शिवनिन्दा और वेदनिन्दा में लगे रहते हैं तथा वेदाचार के विपरीत आचरण करते हैं उन्हें वाराणसी में नहीं रहना चाहिये।"

परापवादशीलेन परदाराभिलाषिणा।
तेन काशी न संसेव्या क्व काशी निरयः क्वसः।।
अभिलष्यन्ति ये नित्यं धनं चात्र प्रतिग्रहैः।
परस्वं कपटैर्वापि काशी सेव्या न तैर्नरैः।।
परपीडाकरं कर्म काश्यां नित्यं विवर्जयेत्।
तदेव चेत् किमत्र स्यात् काशीवासो दुरात्मनाम्।। (स्कं. पु. काशी. पू. 22/97-99)*
परद्रोहधियो ये च परेर्ष्याकारिणश्च ये।
परोपतापिनो ये वै तेषां काशी न सिद्धये।। (स्कं. पु. काशी. पू. 22/103)*
अर्थार्थिनस्तु ये विप्र ये च कामार्थिनो नराः।
अविमुक्तं न तैः सेव्यं मोक्षक्षेत्रमिदं यतः।।
शिवनिन्दापरा ये च वेदनिन्दापराश्च ये।
वेदाचार प्रतीपा ये सेव्या वाराणसी न तैः।। (स्कं. पु. काशी. पू. 22/101-102)*

ब्रह्माजी आगे कहते हैं कि "इस पृथ्वीपर ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। वह ज्ञान न तो चान्द्रायण आदि व्रतों से प्राप्त होता है और न उत्तम देश-काल में सत्पात्रों को विधि एवं श्रद्धापूर्वक दिये हुए तुलापुरुष आदि मुख्य-मुख्य दानों से ही मिलता है। अहिंसा-ब्रह्मचर्य आदि यमों, शौच-सन्तोषादि नियमों, पूजन आदि सत्कर्मों तथा शरीर को सुखानेवाली कठोर तपस्याओं से, भी उसकी प्राप्ति नहीं होती। गुरुओं द्वारा दिये हुए महामन्त्रों के जप से, स्वाध्याय से, शास्त्रोक्त विधि से अग्निहोत्र करने से, गुरुओं की सेवा से, श्राद्ध से, देवपूजन से तथा अनेकों तीर्थों की यात्रा करने से भी उस ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि योग के बिना ज्ञान नहीं होता। गुरु के उपदेश किये हुए मार्ग से निरन्तर अभ्यासपूर्वक तत्त्वार्थ का विचार करना ही योग है। उस योग में भी अनेक प्रकार के विघ्न आया करते हैं, अतः एक ही जन्म में प्रायः ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती; परन्तु इस काशीपुरी में जप, तप और योग के बिना भी एक ही जन्म में कल्याण(मुक्ति) की प्राप्ति हो जाती है"(काशी. पू. अध्याय 22/105-112)।* ऐसा इसलिये संभव होता है कि यहाँ व्यक्ति को भगवान् शिव की कृपा प्राप्त हो जाती है। स्वप्रयास से मुक्ति प्राप्त करने में अनेक जन्म लग सकते हैं परन्तु भगवान् शिव की अहेतुकी कृपा से एक जन्म में या तत्काल भी संभव है।

त्रिदेवों की एकता

अन्य प्रमुख ग्रन्थों की भाँति इस शैवपुराण में भी ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र-इन तीनों की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन हुआ है। यह प्रतिपादन अनेक स्थलों पर बड़े स्पष्टरूप से हुआ है।

शिवपूजा की महिमा के प्रसंग में लोमशजी कहते हैं कि 'हे शिव! और हे हरे! इस प्रकार भगवान् विष्णु एवं शिव का नाम लेने से परमात्मा शिव ने बहुतेरे मनुष्यों की रक्षा की है।'

हरे हरेति वै नाम्ना शम्भोश्चक्रधरस्य च।
रक्षिता बहवो मर्त्याः शिवेन परमात्मना।। (स्कं. पु. माहे. केदा. 5/87)*

अभिप्राय यह है कि व्यक्ति चाहे शिव का नाम ले चाहे हरि का दोनों को भगवान् शिव समान फल देते हैं। अर्थात् भगवान् शिव एवं हरि-इन दोनों में एकता है, भिन्नता नहीं। क्योंकि भगवान् शिव ही हरिरूप धारण करते हैं।

शिवलिंगपूजन की महिमा के सन्दर्भ में कहा गया है कि जो विष्णु हैं, उन्हें शिव जानना चाहिये और जो शिव हैं, वे विष्णु ही हैं। पीठिका(आधार अथवा अर्घा)[1] भगवान् विष्णु का रूप है और उसपर स्थापित लिंग महेश्वर का रूप है।

यो विष्णुः स शिवो ज्ञेयो यः शिवो विष्णुरेव सः।।
पीठिका विष्णुरूपं स्यल्लिंगरूपी महेश्वरः। (स्कं. पु. माहे. केदा. 8/20-21)*

आगे नन्दीजी देवताओं से कहते हैं कि देवाधिदेव महादेवजी साक्षात् विष्णुरूप हैं, अतः आप लोग भगवान् विष्णु से प्रार्थना करें(ताकि वे अवतार लेकर रावण से आपलोगों को मुक्ति दिला सकें)। (माहे. केदा. 8/85)*

देवदेवो महादेवो विष्णुरूपी महेश्वरः।
सर्वे यूयं प्रार्थयंतु विष्णुं सर्वगुहाशयम्

यहाँपर भी यही अभिप्राय है कि भगवान् शिव विष्णुरूप में देवताओं की मदद कर सकेंगे। क्योंकि शिवजी का विष्णुरूप (अर्थात् शिवजी की शक्ति) ही जगत् के पालन एवं देवताओं के कार्य के लिये बार-बार अवतार ग्रहण करता रहता है। एकस्थल पर ओंकार की व्याख्या करते समय बताया गया है कि अकार ब्रह्मा, उकार भगवान् विष्णु तथा मकार भगवान् महेश्वर का प्रतीक माना गया है। ये तीनों गुणमय स्वरूप बतलाये गये हैं। ॐकार के मस्तकपर जो अनुस्वाररूप अर्द्धमात्रा है, वह सर्वोत्कृष्ट भगवान् सदाशिव का प्रतीक है।

---

1. आमतौर पर अर्घा या पीठ देवी का रूप माना जाता है। परन्तु देवी को विष्णु का रूप भी माना गया है। कई पुराणों में भगवान् विष्णु को शिव के वामार्द्ध से उत्पन्न हुआ माना जाता है और ब्रह्मा को दक्षिणार्द्ध से। चूँकि शिवजी का वामार्द्ध पार्वती देवी हैं, इसलिये विष्णुजी को देवी का ही रूपान्तर माना जाता है। कुछ पुराणों में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि शक्ति ही विष्णुरूप में अवतरित हैं। ऐसे स्थलों पर शक्ति एवं विष्णु की एकता की ओर संकेत है। चूँकि शिव एवं शक्ति में अभेद है, इसलिये विष्णु एवं शिव में भी अभेद है।

अकारः कथितो ब्रह्मा उकारो विष्णुरुच्यते।
मकारश्च स्मृतो रुद्रस्त्रयश्चैते गुणाः स्मृताः।।
अर्द्धमात्रा च या मूर्ध्नि परमः स सदाशिवः। (स्क. पु. माहे. कुमा. 5/68-69)*

यहाँपर ॐ के माध्यम से तीनों देवताओं की एकता को समझाया गया है। भगवान् शिव कार्तिकेयजी से स्वयं कह रहे हैं कि "जो मैं हूँ, वही भगवान् विष्णु को जानना चाहिये तथा जो भगवान् विष्णु हैं, वही मैं हूँ। जैसे दो दीपकों में प्रकाश की दृष्टि से कोई अन्तर नहीं होता, उसी प्रकार हम दोनों में भी किंचिन्मात्र अन्तर नहीं है। जो भगवान् विष्णु से द्वेष करता है वह मुझसे भी द्वेष करता है, जो उनका अनुगमन करता है, वह मेरा भी अनुगामी है। जो ऐसा जानता है, वही मेरा वास्तविक भक्त है।"

यो ह्यहं स हरिर्ज्ञेयो यो हरिः सोऽहमित्युत।।
नावयोरन्तरं किञ्चिद्दीपयोरिव सुव्रत।
एनं द्वेष्टि स मां द्वेष्टि योऽन्वेत्येनं स मांऽनुगः।। (माहे. कुमा. 33/45-46)*

इस पुराण में एक बड़ा रोचक प्रसंग आया है जिसमें तीनों देवों की एकता को स्पष्टरूप से समझाया गया है। उस प्रसंग को हम यहाँ यथावत् प्रस्तुत कर रहे हैं।

करन्धम ने महाकाल से पूछा-ब्रह्मन्! कोई भगवान् शिव की, कोई विष्णु की तथा कोई ब्रह्माजी की शरण लेने से सर्वोत्कृष्ट मोक्ष की प्राप्ति बतलाते हैं; किंतु आप किससे मुक्ति मानते हैं?

महाकाल ने कहा-नरश्रेष्ठ! इन तीनों देवताओं की महिमा अपार है। इस विषय में बड़े-बड़े योगीश्वरों का भी मन मोहित हो जाता है, फिर मेरी तो बात ही क्या है? कहते हैं प्राचीन काल में कभी नैमिषारण्यनिवासी मुनियों को भी यह सन्देह हुआ था कि इन तीनों देवताओं में कौन सबसे श्रेष्ठ है। तब वे ब्रह्मलोक में गये। उसी समय भगवान् ब्रह्मा ने इस श्लोक का पाठ किया-

अनन्ताय नमस्तस्मै यस्यान्तो नोपलभ्यते।
महेशाय च द्वावेतौ मयि स्तां सुमुखौ सदा।।

(संक्षिप्त स्कं. पु. माहे. खं. कुमा. 36/4 पृ. 130)

अर्थात्-'उन भगवान् अनन्त को नमस्कार है, जिनका कहीं अन्त नहीं मिलता तथा जो सबके महान् ईश्वर हैं, उन भगवान् शंकर को भी नमस्कार है। ये दोनों देवता सदा मुझपर प्रसन्न रहें।'

इस श्लोक के अनुसार भगवान् विष्णु और शंकर की श्रेष्ठता निश्चय करके वे सब मुनि क्षीरसागर को गये। वहाँ योगेश्वर भगवान् विष्णु ने इस श्लोक का पाठ किया-

ब्रह्माणं सर्वभूतेषु परमं ब्रह्मरूपिणम्।।
सदाशिवं च वन्दे तौ भवेतां मङ्गलाय मे। (स्कं. पु. माहे. खं. कुमा. 41/6-7)*

अर्थात्-'मैं सम्पूर्ण भूतों में व्यापक परब्रह्मस्वरूप भगवान् ब्रह्मा और सदाशिव को प्रणाम करता

हूँ। वे दोनों मेरे लिये मङ्गलकारी हों।'

यह श्लोक सुनकर उन ब्रह्मर्षियों को बड़ा विस्मय हुआ । वे वहाँ से हटकर पुनः कैलास पर्वत पर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि भगवान् शंकर गिरिराजनन्दिनी उमा से इस प्रकार कह रहे हैं–

एकादश्यां प्रनृत्यामि जागरे विष्णुसद्मनि।।

सदा तपस्याश्चरामि प्रीत्यर्थं हरिवेधसोः। (स्कं. पु. माहे. खं. कुमा. 41/8-9)*

अर्थात्–'देवि! मैं भगवान् विष्णु और ब्रह्माजी की प्रसन्नता के लिये भगवान् विष्णु के मन्दिर में एकादशी को जागरणपूर्वक नृत्य करता हूँ तथा उन्हीं दोनों की प्रसन्नता के लिये सदा तपस्या किया करता हूँ।'

यह सुनकर वे मुनि लोग वहाँ से भी खिसक आये और आपस में कहने लगे– जब ये तीनों देवता ही एक दूसरे का पार नहीं पाते, तब उनके द्वारा उत्पन्न किये हुए महर्षियों की सन्तान-परम्परा में जन्म लेनेवाले हमलोगों की क्या गणना है? जो इन तीनों में से किसी एक को उत्तम, मध्यम या अधम बतलाते हैं, वे झूठ बोलनेवाले और पापात्मा हैं। उन्हें निश्चय ही नरक में जाना पड़ता है। राजेन्द्र! नैमिषारण्यवासी तपस्वी मुनियों ने ऐसा ही निश्चय किया। यह सत्य ही है और मेरा भी यही स्पष्ट मत है। सहस्त्रों जप करनेवाले, सहस्त्रों वैष्णव तथा सहस्त्रों शैव ब्रह्मा, विष्णु और शिव का अनुगमन(आराधन) करके अपने को संसार-बन्धन से मुक्त कर चुके हैं। इसलिये जिसका हार्दिक अनुराग जिस देवता के प्रति स्पष्टरूप से प्रकट हो, वह उसी का भजन करे। इससे वह पापरहित हो सकता है, यही मेरा सर्वोत्तम मत है। भावार्थ यह है कि तीनों देवों में अभेदत्व है।

तस्माद्यस्य मनोरागो यस्मिन्देवे भवेत्स्फुटम् ।

स तं भजेद्विपापः स्यान्ममेदं मतमुत्तमम्।।" (स्कं. पु. मा. खं. कुमा. 41/14)*

एक अन्य स्थलपर ब्रह्माजी देवताओं से कह रहे हैं कि एक समय शिवभक्तों का भगवान् विष्णु के भक्तों के साथ एक दूसरे को जीतने की इच्छा से बड़ा विवाद हुआ। तब भगवान् शंकर ने अपने भक्तों के देखते-देखते एक परम अद्भुतरूप धारण किया। वह उनका हरि-हरस्वरूप था। वे आधे शरीर से शिव और आधे शरीर से विष्णु हो गये। एक ओर भगवान् विष्णु के चिन्ह और दूसरी ओर भगवान् शिव के चिन्ह प्रकट हुए। एक ओर गरुड़ और दूसरी ओर नन्दी उपस्थित थे। एक ओर मेघ के समान श्यामवर्ण था तो दूसरी ओर कर्पूर के समान गौरवर्ण। दोनों में एकता का स्पष्टीकरण हुआ। इस प्रकार उनकी भेदबुद्धि नष्ट हो गयी। सबने अपने-अपने मत का आग्रह छोड़कर मोक्षमार्ग(अभेदज्ञान) की शरण ली। मन्दराचल पर्वतपर वह हरिहर-मूर्ति आज भी विद्यमान है(संक्षिप्त स्कं. पु. ब्राह्म. चातुर्मास्य माहात्म्य)।[1]

एक अन्य प्रसंग में भगवान् के पार्षद ब्राह्मण शिवशर्मा से कह रहे हैं कि जैसे विष्णु हैं, वैसे

1. संक्षिप्त स्कंदपुराण, पृ. 498

शिव हैं। शिव और विष्णु में तनिक भी अन्तर नहीं है।

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः।

अन्तरं शिवविष्णोश्च मनागपि न विद्यते ।। (स्कं. पु. काशी खं. पूर्वा. 23/41)*

काशीमहिमा के सन्दर्भ में किसी प्रसंगवश स्कंदजी अगस्त्यजी से कहते हैं कि "प्राकृत प्रलय की अवस्था में ब्रह्मा, विष्णु और शिव बने रहते हैं। कालस्वरूप परमात्मा प्रकृतिस्थ पुरुष को लीलापूर्वक अपने से अभिन्न कर लेते हैं। वे परम पुरुष परमेश्वर ही महाविष्णु कहलाते हैं। उन्हीं को महादेव कहते हैं। वे ही आदि, मध्य और अन्त से रहित शिव हैं। वे ही लक्ष्मीपति तथा वे ही पार्वतीपति हैं[1]" यहाँ पर भी भगवान् शिव एवं विष्णु की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन हुआ है।

जैगीषव्य मुनि भगवान् शिव की स्तुति में कह रहे हैं कि एकमात्र आप ही ईश्वर हैं, आप ही कर्त्ता हैं तथा आप ही पालन एवं संहार करनेवाले हैं। सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भिन्न-भिन्न देवता हैं, यह भेद-भाव मूर्खों की कल्पनामात्र है (काशीखण्ड उत्त. अध्याय 63/64-65)। यहाँ पर भी तीनों देवों की तात्त्विक एकता को ही व्यक्त किया गया है।

गरुड़ को भगवान् शिव वरदान देते समय कह रहे हैं कि हम ही वह विष्णु हैं और वह विष्णु ही हम हैं, हम दोनों में तुम्हारी भेद-दृष्टि नहीं होनी चाहिये।

असावहं स वै विष्णुर्मास्तु ते भेददृक् च नौ। (काशीख. पू. 50/144)*

भगवान् शिव स्वयं एक स्थलपर भगवान् विष्णु से कह रहे हैं कि विष्णु! जैसे मैं हूँ वैसे ही तुम हो।

यथाहं त्वं तथा विष्णो। (काशीख. पू. 27/183)*

भगवान् शिव की (लिंगरूपधारी ॐकारेश्वररूप की) स्तुति में ब्रह्माजी कहते हैं कि "आप ही विष्णुरूप से शंख, चक्र और गदा धारण करके तीनों लोकों का पालन करते हैं। ..... आप ही सृष्टिरचना के ज्ञाता ब्रह्मा होकर इस विश्व की सृष्टि करते हैं। ..... आप ही कल्प के अन्त में कालग्निरुद्र होकर महाप्रलय आरंभ करते हैं" (स्कं. पु. का. ख. उ. 73/131-134)।* यहाँपर भावार्थ यह है कि एक ही परमतत्त्व शिव अपने को सृष्टिकार्य के लिये तीन रूपों-ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र में प्रकट करता है, अतः इन तीनों देवों में तात्त्विक एकरूपता है।

इसी प्रकार यमराज भी भगवान् शिव की स्तुति में कहते हैं कि "आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप होकर इस विश्व की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं" (स्कं. पु. का. ख. उ. 78/36)।*

भगवान् शिव ने काशी में मोक्षलक्ष्मीविलास नामक प्रासाद बन जानेपर विरजापीठ से चलकर अन्तर्गृह में प्रवेश किया। वहाँ पर भगवान् विष्णु शिवजी से बोले कि मैं आपके चरणों से दूर न होऊँ।

1. संक्षिप्त स्कन्द पुराण पृ. 607

मधुसुदन का यह वचन सुनकर महादेवजी बोले– "मुरारे! मोक्षलक्ष्मी के आश्रयभूत इस स्थानपर तुम सदा मेरे समीप रहो। भक्तियुक्त होकर भी जो पहले तुम्हारी आराधना किये बिना मेरी सेवा–पूजा करेगा, उसकी मनोकामना कदापि सिद्ध न होगी।" अर्थात् काशी के विश्वेश्वरलिंग के अन्तर्गृह में पहले विष्णु की पूजा के बाद ही भगवान् शिव अपनी पूजा स्वीकार करते हैं। ऐसा विष्णु को दिये उनके वरदान के कारण है।(स्कं. पुराण, काशी. उत्तरार्ध 97/30–31)

इसी प्रकार ब्रह्माजी सनकादि को द्वारका में कह रहे हैं कि "पुत्रों ! जिसने महादेवजी का पूजन किया है, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। यदि भगवान् शिव की पूजा नहीं की जाय तो श्रीहरि अपनी पूजा को ग्रहण नहीं करते। अत: सब प्रकार से यत्न करके भगवान् शंकर का पूजन करना चाहिये; जिससे सदा भगवान् विष्णु के लिये की हुई पूजा पूर्णता को प्राप्त हो।"

येनार्चितो महादेवस्तस्य तुष्यति केशवः।
अनर्चिते नीलकण्ठे न गृह्णात्यर्चनं हरिः।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूज्यतां नीललोहितः।
येन सम्पूर्णतां याति कृष्णपूजा कृता सदा।।

(संक्षिप्त स्कं. पु. प्रभा. द्वार. मा.15/4–5 पृ 1063)

ब्रह्माजी का उपरोक्त कथन केवल द्वारका में भगवान् कृष्ण की पूजा के सन्दर्भ में न होकर एक सामान्य कथन है। इसके पीछे भाव यह है कि भगवान् शिव एवं विष्णु में वस्तुत: अभेदत्व है। इनमें भेद करना ठीक नहीं है। इसीलिये ऊपर के अन्तिम दोनों उद्धरण भगवान् शिव एवं विष्णु के बीच घनिष्ठता, प्रेम एवं अभेदत्व का संकेत करते हैं।[1]

अब हम तीनों देवों की अभिन्नता का अन्तिम उदाहरण देखें। महादेवजी पार्वती से कहते हैं कि "जो भक्तिपूर्वक ब्रह्माजी की पूजा करता है, वह निश्चय ही मेरा पूजन करता है। जो उनसे द्वेष करता है, वह मुझसे ही द्वेष करता है और जो उनका पुजारी है, वह मेरा ही पूजक है। ब्रह्माजी की पूजा करनेवाले पुरुषों के द्वारा मैं और भगवान् विष्णु दोनों ही पूजित होते हैं। विष्णु सत्त्वगुणी हैं, ब्रह्माजी रजोगुणी हैं और रुद्र तमोगुणी हैं। ब्रह्माजी वायु, रुद्रदेव अग्नि तथा भगवान् विष्णु जलरूप हैं। मैं सामवेद का आश्रय हूँ। ब्रह्माजी ऋग्वेद धारण करते हैं तथा भगवान् विष्णु यजुर्वेद के स्वरूप एवं अथर्ववेद की कला के आधार हैं। ..... ब्रह्माजी नाभि में, विष्णु हृदय में तथा सब भूतों का

1. वास्तव में एक की पूजा दूसरे की पूजा के बिना अपूर्ण है क्योंकि एक ही तत्त्व के वे दोनों अभिन्न अंग हैं। भगवान् विष्णु सगुण शिव के वामार्द्ध माने जाते हैं। अत: शिव की पूजा करते समय उनमें विष्णु की भावना तथा विष्णु की पूजा करते समय उनमें शिव की भावना रखनी चाहिये। ऐसी भावना से युक्त होनेपर ही पूजा की पूर्णता होती है। दूसरे शब्दों में शिव एवं विष्णु में अद्वैत भाव को रखकर उपासना करने से ही पूजा की सार्थकता है।

आधारभूत मैं चक्र (मूलाधार से लेकर ब्रह्मरन्ध्रतक) में स्थित हूँ। हम लोगों के रूप में शक्तिविशेष से साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही स्थित हैं। ॐकार परब्रह्म है और गायत्री उत्तम प्रकृति है। .....इस प्रकार जो द्वैतरहित परब्रह्म को जानता है, वह सब कुछ जानता है। जो भेददर्शी है, वह नहीं जानता। परब्रह्म तो वास्तव में एकरूप ही है, तथापि कार्यरूप से यह पृथक-सा (ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप से) प्रतीत होता है। जो उससे द्वेष करता है, वह ब्रह्मद्वेषी कहलाता है। मेरे दाहिने अंग में ब्रह्मा और बायें अंग में विष्णु विराजमान हैं, जो इन दोनों से द्वेष करता है, वह मेरा ही द्वेषी है। ऐसा जानकर मन में भेदभाव न रखते हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र की एकरूपता से ही पूजा करनी चाहिये।" (संक्षिप्त स्कं. पु. प्रभासखण्ड पृ. 991)

उपसंहार

इस पुराण में भगवान् शिव के परब्रह्म एवं अपर ब्रह्म (सगुण एवं निर्गुण) दोनों ही रूपों का विस्तार से वर्णन है। उन्हें कूटस्थ, अचिन्त्य तत्त्व, निर्गुण, चैतन्यस्वरूप, सम्पूर्ण भूतों के साक्षी, मनवाणी से परे, अविनाशी, सर्वगुणातीत, निरंजन, एक, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्रस्वरूप, जगत् के कर्त्ता, धारण कर्त्ता एवं संहारकर्त्ता, परमेश्वर, ॐकारस्वरूप, तीनों लोकों के अधीश्वर, सभी विद्याओं एवं ऐश्वर्यों को प्रदान करनेवाले, जगत् के बाहर-भीतर व्याप्त, पशुपति जो पाशबद्ध लोगों को मुक्त करते हैं, जालंधर एवं अंधक आदि राक्षसों का वध करनेवाले, अर्द्धनारीश्वर, कालकूट का पान करनेवाले, पंचमुख, विष्णु को सुदर्शनचक्र प्रदान करनेवाले, रामेश्वर, यज्ञस्वरूप, पृथ्वी, जल आदि अष्टमूर्ति धारण करनेवाले, त्रिनेत्र, त्रिशूलधारी, सबपर दया करनेवाले, वरदाता, कर्मफलदाता, कल्याणस्वरूप, लिंगरूप, जटा-जूट धारण करनेवाले, शान्तस्वरूप, ज्ञानात्मा, सर्वव्यापी, नीलकण्ठ, दाहिने अंग से ब्रह्मा एवं बायें से विष्णु को प्रकट करनेवाले, मृत्युञ्जय, देवता, दानव, असुर, यक्ष, विद्याधर, मनुष्य आदि सभी द्वारा पूज्य, वासुकिनाग को आभूषण के रूप में धारण करनेवाले, नीलकण्ठ, चन्द्रमा को शिरपर धारण करनेवाले, राहु के मुण्डों की माला धारण करनेवाले, गजचर्म धारण करनेवाले, वृषभपर सवारी करनेवाले, कर्पूरगौरवर्णवाले इत्यादि संज्ञाओं एवं विशेषणों से युक्त माना गया है।

भगवान् शिव भोग एवं मोक्ष के दाता हैं अतः उनकी उपासना से अनेक सुर-असुर, नाग, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व एवं मनुष्य आदि ने अपने मनोवांछित वर प्राप्त किये हैं। उदाहरण के लिये ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, यमराज, नारद, कुबेर, राम, परशुराम, विश्वामित्र, सूर्य, चन्द्रमा, गरुड़, रावण, बाणासुर, विश्वकर्मा, लोमश, अगस्त्य, बृहस्पति इत्यादि लोगों ने भगवान् शिव से इच्छित वरों की प्राप्ति की है।

सूत संहिता में विष्णु के मुक्तिसंबंधी तीन प्रश्नों के उत्तर में भगवान् शिव कहते हैं कि ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के सालोक्य, सामीप्य, सायुज्यादि भेद से होनेवाली चारों प्रकार की मुक्तियों से श्रेष्ठ पाँचवें प्रकार की कैवल्य मुक्ति है जिसकी प्राप्ति ज्ञान से होती है। यह मुक्ति केवल भगवान् शिव ही

दे सकते हैं। अन्य देव पूर्वोक्त चारों प्रकार की मुक्ति दे सकते हैं पर कैवल्य मुक्ति को नहीं। सूत संहिता के ज्ञानवैभवखण्ड में भगवान् विष्णु सत्यसन्ध के प्रति स्वयं कह रहे हैं कि संसारी जनों को मैं संसार से साक्षात् मुक्ति नहीं दे सकता इसी प्रकार अन्य ब्रह्मादि देव भी नहीं दे सकते। मैं और ब्रह्मादि भगवान् शिव की आज्ञा से ही संसारमोचक हो सकते हैं क्योंकि कैवल्य मुक्ति देनेवाले मात्र भगवान् शिव हैं।

भगवान् शिव की भक्ति मानसिक, वाचिक और कायिक या लौकिकी, वैदिकी और आध्यात्मिक किसी भी प्रकार से की जा सकती है। मानसिक और आध्यात्मिकी भक्ति में ध्यान, धारणा, योग और ज्ञान आदि का सहारा लिया जा सकता है। वाचिक में कीर्तन और स्तुति आदि का तथा कायिक में व्रत, उपवास एवं इन्द्रियसंयमों का सहारा लिया जाता है। लौकिकी भक्ति में षोडशोपचार आदि के द्वारा पूजा की जाती है जबकि वैदिकी में वेदमन्त्रों द्वारा। ज्ञान एवं योगमार्ग की भक्ति सर्वसाधारण लोगों के लिये असाध्य है अत: ऐसे लोगों के लिये शिवजी का पूजन सबसे सरल उपाय है जिससे भोग एवं मोक्ष दोनों ही प्राप्त हो जाता है। भगवान् शिव का मन्दिर बनवाना, उसमें झाड़ू–सफाई का प्रबन्ध करना तथा मंदिर एवं पूजासंबंधी अन्य सभी प्रकार की व्यवस्था कराना नाना प्रकार के पुण्यों को जन्म देती है जिससे कालान्तर में मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इस पुराण में नाना प्रकार के स्तोत्र, कवच, व्रत तथा तीर्थों का वर्णन उनके माहात्म्य एवं विधि के साथ किया गया है। इनमें से शिवरात्रिव्रत तथा काशीतीर्थ की महिमा विशेष रूप से गायी गयी है।

काशीवास या तीर्थवास के दौरान कोई भी पाप नहीं करना चाहिये अन्यथा उन्हें रुद्रपिशाच बनकर यातना भोगनी पड़ती है जो यमयातना से भी दु:सह है। यम–यातना के पश्चात् तीर्थ के प्रभाव से उसे मुक्ति प्रप्त होती है। पूर्णरूप से तीर्थ का लाभ आस्थावान् तथा चरित्रवान् को ही मिल पाता है। इसी प्रकार शिवपूजन में रुद्राक्ष, भस्म एवं बिल्वपत्र के महत्त्व को भी दर्शाया गया है। अन्त में पंचाक्षरमंत्र की भी बड़ी प्रशंसा की गयी है। कहा गया है कि इस मन्त्र के लिये देश, काल, व्यक्ति, दीक्षा, शुद्धि, अशुद्धि तथा मार्जन आदि किसी की भी आवश्यकता नहीं है तथा इसके जप से व्यक्ति मोक्षतक पहुँच जाता है। यहाँतक कि अनजान में भी भगवान् शिव का लिया नाम महान् फल देनेवाला कहा गया है।

शिवनिन्दा करनेवाले तथा सुननेवाले दोनों की निन्दा इस पुराण में की गयी है। दोनों ही सूर्य, चन्द्रमा की स्थितितक नरक में पड़े रहते हैं। पुन: यह भी कहा गया है कि शिवनिन्दक को किसी भी तीर्थ का फल प्राप्त नहीं होता अत: किसी भी व्यक्ति को(चाहे वह भगवान् के जिस किसी भी रूप की उपासना करे) शिवनिन्दा से बचना चाहिये।

इस पुराण में अनेक स्थलपर त्रिदेवों(ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव) की एकता को बतलाया गया है। भगवान् शिव ही गुणों को धारणकर सृष्टि व्यवस्था के लिये ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का रूप धारण करते

हैं। ये तीनों देव तत्त्वतः एक हैं इनमें कोई बड़ा-छोटा नहीं है क्योंकि एक ही तत्त्व ब्रह्म या सदाशिव ने तीनों रूपों को धारण किया हुआ है। यह उपासक की रुचिपर निर्भर करता है कि परब्रह्म के किस सगुण-साकाररूप की वह उपासना के लिये चुनता है। सृष्टि के आदि में निर्गुण ब्रह्म ने अपने को शिवरूप में प्रकट किया, तत्पश्चात् उस रूप ने अपने दाहिने एवं बायें अंगों से क्रमशः ब्रह्मा एवं विष्णु को प्रकट किया और उन दोनों के द्वारा सृष्टि का व्यापार चल पड़ा। इसी प्रकार सृष्टि के अन्त में महाप्रलय के समय सभी वस्तुएँ ब्रह्माजी में लीन हो जाती हैं फिर ब्रह्माजी विष्णु में और अन्त में विष्णुजी भगवान् शिव में लीन हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में सृष्टि के अन्त में सदाशिव ब्रह्मा एवं विष्णु दोनों को अपने में लीन कर लेते हैं। तत्पश्चात् वे स्वयं अपना सगुणरूप त्यागकर निर्गुणरूप को स्वीकार कर लेते हैं। फिर जब सृष्टि-प्रक्रिया शुरू करनी होती है तो पहले सदाशिव निर्गुण से सगुण हो ब्रह्मा एवं विष्णु की सृष्टि करते हैं जिनसे पुनः सृष्टि-व्यापार चल पड़ता है। अतः निष्कर्ष यह है कि शिव संहारकारी देव होने के कारण सृष्टि के विनाश होनेतक बने रहते हैं। फिर सृष्टि प्रारंभ करते समय भी वे ही सबसे पहले प्रकट होते हैं क्योंकि प्रकृति की साम्यावस्था में विक्षोभ के बगैर सृष्टि-प्रक्रिया शुरू नहीं हो सकती तथा किसी अवस्था में विक्षोभ लाने का अर्थ है उस अवस्था को नष्ट कर देना। नष्ट करना भगवान् शिव का कार्य है। अतः बने हुए को बिगाड़ना तथा बिगड़े हुए को बनाना दोनों ही संहारकार्य के अन्तर्गत आते हैं।

यही कारण है कि भगवान् शिव को मृत्युञ्जय, अजन्मा, अविनाशी आदि विशेषणों से विभूषित किया जाता है। भगवान् शिव सृष्टि के आदि में प्रकट होनेवाला पहला तत्त्व तथा सृष्टि के प्रलयोपरान्त रहनेवाला अन्तिम तत्त्व है जबकि ब्रह्मा तथा विष्णुजी सृष्टि के आदि में प्रकट होनेवाले दूसरे तत्त्व तथा प्रलय के बाद बने रहनेवाले अन्तिम तत्त्व से पहलेवाले तत्त्व हैं।

(प्रस्तुत निबंध 'कल्याण' के 'संक्षिप्त स्कंदपुराणांक' तृतीय संस्करण, जो गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित है, तथा 'श्रीस्कंदमहापुराणम्' जो नाग पब्लिशर्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित है, पर आधारित है। सभी तारांकित उद्धरण 'श्रीस्कंदमहापुराणम्' के हैं। वेंकटेश्वर प्रेसवाला संस्करण ही नाग पब्लिशर्स ने पुनः मुद्रित किया है।)

मांसाहार न करने की प्रशंसा

मासि मास्यश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः।
न खादति च यो मासं सममेतन्मतं मम।

अर्थात्-जो सौ वर्षोंतक प्रतिमास अश्वमेध यज्ञ करता है और जो कभी मांस नहीं खाता है-इन दोनों का समान फल माना गया है। (महाभारत, अनुशासन पर्व 115/14)